॥ ओ३म् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण
की आलोचना

: लेखक :

डॉ. भवानीलाल भारतीय

"ब्रह्मवैवर्तपुराण की आलोचना"

-: लेखक :-

डॉ. भवानीलाल भारतीय

प्रस्तावना

तथाकथित व्यास विरचित अठारह पुराणों में ब्रह्मवैवर्त पुराण अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण पुराण अध्येताओं का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। अन्यान्य पुराणों में राम, कृष्ण आदि को विष्णु का अवतार सिद्ध किया गया है, परन्तु इस पुराण में कृष्ण को सर्वोपरि शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि को कृष्ण का अवतार माना है। कृष्ण के साथ-साथ राधा का नाम भी इसी पुराण में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ है। इससे पूर्व राधा का संकेत मात्र भी उल्लेख कृष्ण चरित्र का वर्णन करने वाले किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता। अन्य भी कुछ विशेषतायें हैं, जिनके कारण इस पुराण का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन करना हमारे लिये केवल आवश्यक और उपादेय ही नहीं अपितु मनोरञ्जक भी सिद्ध होगा।

ब्रह्मवैवर्त पुराण की अर्वाचीनता

जिन विद्वानों ने पुराणों का वैज्ञानिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण से अध्ययन किया है, वे सर्व सम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन सभी पुराण नामधारी रचनाओं को न तो व्यासोक्त ही कहा जा सकता है और न इसका रचनाकाल ही उतना प्राचीन है, जितना कि बताया जाता है। लेखक, शैली और विषय प्रतिपादन में अन्तर,

परस्पर विरोध, कथन तथा ऐसे अन्य शतशः कारण हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन ग्रन्थों के लेखन और सम्पादन में एकाधिक व्यक्तियों का हाथ रहा है तथा इनकी रचना भी एक ही समय में न होकर शताब्दियों तक होती रही है। इस दृष्टि से विष्णु पुराण, सर्वाधिक प्राचीन माना गया है। मत्स्य और वायु पुराण भी पर्याप्त प्राचीन हैं, परन्तु भागवत पुराण की अर्वाचीनता का उल्लेख सभी विद्वानों ने एक मत होकर किया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणकी अर्वाचीनता तो और भी स्पष्टतया सिद्ध हो चुकी है। कृष्ण चरित के सुप्रसिद्ध विश्लेषक बंगभाषा के साहित्य सम्राट् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के अनुसार ब्रह्मवैवर्त का प्रचलित संस्करण अधिक पुराना नहीं है।[१] हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० वेंकटेश नारायण तिवारी ने अपने एक लेख में इस पुराण के प्रचलित सङ्कलन का रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी माना है।[२] यह वह समय था जब कि वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ-साथ राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि कवियों द्वारा राधा की परकीया भावापन्न शृङ्गार साधना का अत्यन्त वासनोत्तेजक वर्णन अपने काव्य ग्रन्थों में किया जा चुका था और जार भाव युक्त इस तथाकथित भक्ति को शास्त्रीय आधार पर प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता वैष्णव क्षेत्रों में अनुभव की जा रही थी। सम्भवतः इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये इस पुराण की रचना हुई और उसमें राधा को कृष्ण की आद्या शक्ति और गोलोक में उनकी शाश्वत लीला सहचरी के रूप में चित्रित करते हुए भी राधा और कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं को अत्यन्त स्थूल आधार पर चित्रित किया गया जो तत्कालीन शृङ्गार भावापन्न मनोवृत्ति का परिचायक है।

---

१. कृष्ण चरित्र — बङ्गाली भाषा में लिखित।

२. सरस्वती भाग ३५ सं० ३ पृ० २७० सितम्बर १९६५।

ब्रह्मवैवर्त में वेदनिंदा

पुराणों को अनाष ग्रन्थ मानते हुये और अनार्ष ग्रन्थों का एक लक्षण वेद निन्दा बताते हुये महर्षि दयानन्द ने प्रचलित सभी पुराणों को अप्रामाणिक घोषित किया है। उनके इस कथन में हमें पूर्ण सत्यता के दर्शन होते हैं। वेद जैसे सर्व सम्मत शास्त्र की निंदा और अवहेलना पुराणों में पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है। पुराणों में अपने अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों के द्वारा वेदों के महत्व को सदा Underestimate (कम) करने का यत्न किया है। ब्रह्मवैवर्त भी इसका अपवाद नहीं है। हम अनेक प्रमाण देकर इस कथन को सिद्ध करेंगे। सम्प्रति उपलब्ध ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणपतिखण्ड और कृष्ण जन्मखण्ड पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस क्रम से पांच खण्डों में विभक्त हुआ है। प्रथम ब्रह्मखण्ड के प्रथम अध्याय में ही इस पुराण के माहात्म्य का कथन करते हुये उसे पुराणों, उपपुराणों, तथा वेदों का भ्रमभडाक कहा गया है :—

> पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रम भञ्जनम् ।
> हरिभक्ति प्रदं सर्व तत्व ज्ञान विवर्धनम् ॥ १ । ४५ ॥

पुराणों के सारभूत (सारभूत पुराणेषु १ । ४४) इस ब्रह्मवैवर्त को पुराणों और उपपुराणों में चाहे सर्वोपरि माना जाय परन्तु उसे वेदों का भ्रम भञ्जक बताना सर्वथा आपत्ति जनक है। वेद जो कि अखिल धर्म का मूल कहा गया है, उसके लिये इसके आपत्तिजनक शब्द कहना पुराणकार का प्रमाद है।

इसी पुराण में वेदोत्पत्ति के विषय में एक अत्यन्त अश्लील और वीभत्स उल्लेख पाया जाता है। इसे पढ़कर पाठक सहज ही अनुमान लगा सकेंगे कि पुराणों ने वेदों को दूषित रूप में प्रस्तुत करने की कितनी घृणित चेष्टा की है। कहां वेदों को उत्पत्ति के विषय में स्वयं वेदों की ही अन्तःसाक्षी है, जिसमें वेदो को यज्ञ रूपी परमेश्वर

से उत्पन्न बताया गया है।[१] उपपिषदों में भी उन्हें परमात्मा का विश्वासभूत बताया गया है।[२] और कहाँ पुराण का यह उल्लेख जिसमें वेदों की उत्पत्ति के लिये एक काल्पनिक अश्लील कथा की रचना की गई है।

ब्रह्मखण्ड के नवमें अध्याय के आरम्भ में ये दो श्लोक मिलते हैं—

ब्रह्मा विश्वम् विनिर्माय सावित्र्यां वर योषिति।
चकार वीर्याधानम् च कामुक्यां कामुको यथा॥
सा दिव्यं शतवर्ष च धृत्वा गर्भं सुदु:सहम्।
सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान्मनोहरात्॥ ९। १। २॥

अर्थात् ब्रह्मा ने विश्व का निर्माण कर सावित्री में उसी प्रकार वीर्यादान किया जिस प्रकार एक कामुक पुरुष कामुकी स्त्री में करता है। उस साबित्री ने उस दिव्य गर्भं को सौ वर्ष तक धारण किया तदन्तर मनोहर चारों वेदों को जन्म दिया। पाठक देखें, जिन वेदों की उत्पत्ति ही काममूलक है, उनसे धर्म के विधान की क्या आशा की जा सकती है। पुराणों ने सर्वत्र इसी प्रकार वेद निंदा का कुत्सित प्रयत्न किया है।

वेदों के महत्व को न्यून करना पुराणकारों का सदा का प्रयास रहा है। उनकी दृष्टि में वेदाध्ययन की अपेक्षा तो पौराणिक मूर्तियों का अर्चन ही कहीं अधिक पुण्यदायक है। प्रकृति खण्ड के इक्कीसवें अध्याय में कहा गया है।

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसा करणे सति।
तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात्॥ २१। ८५॥

---

१. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ यजुर्वेद ३१। ७

२. अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृगवेदो यजुर्वेद:
सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस:॥ बृहदारण्यक उपनिषद् २। ४। १०

अर्थात् चारों वेदों के पाठ करने तथा तपस्या करने से जो फल मिलता है, वह शालग्राम (शिला) की पूजा करने से सहज ही मिल जाता है। अब पुराण की बातों पर विश्वास कर वेदाध्ययन में श्रम करना कौन चाहेगा। जब सस्ते ही शालग्राम शिलार्चन से मुक्ति मिलती है तो सांगोपांग वेद पढ़कर परिश्रम के मार्ग को कौन अपनाना चाहेगा। जहाँ भगवान् पतञ्जलि ने ब्राह्मण के लिये निष्करण-षडङ्ग वेद का अध्ययन अनिवार्य बताया है।[1] और जहाँ धर्मशास्त्रकार मनु वेदाध्ययन के अभाव में द्विज को सपरिवार शूद्रों के तुल्य मानने की घोषणा करते हैं[2] वहाँ पुराणकार शालग्राम पूजन का विधान कर ही सन्तुष्ट हो जाता है। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है।

पुराणकृत वेद निंदा के और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। यहाँ गणपति खण्ड के आठवें अध्याय में पार्वती कहती हैं :—

केवलं वेद माश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्।
बलवांल्लौकिको वेदाल्लोकाचारम् च कस्त्यजेत् ॥

केवल वेद को आश्रय बनाकर कौन निर्णय कर सकता है? लोकाचार वेद से सदा ही बलवान् है। अतः लोकाचार को कौन छोड़ सकता है? यहाँ स्पष्ट ही वेदाज्ञा को लोकाचार से हीन बताया गया है। जहाँ मनु आदि धर्मशास्त्रकार 'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः" कह कर वेद को धर्म-निर्णय करने में प्रधान प्रमाण मानते हैं, वहाँ इस पुराण की दृष्टि में वह लोकाचार से भी न्यून महत्व रखता है। वस्तुतः देशाचार और लौकिक आचार को वहीं प्रमाण

---

१. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयोज्ञेयश्च महाभाष्य पस्पशाह्निक।

२. यो अनधीत्य द्विजो वेद अन्यत्र कुरुते कामम्।
स जीवन्नेव तु शूद्रत्वं आशु गच्छति सान्वयाः ॥

माना जाना चाहिये, जहाँ श्रुति और स्मृति से उसका साक्षात् विरोध प्रतीत न हो[३] अन्यथा प्रत्येक बात का निर्णय लोकाचार के आधार पर करना अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

कृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय के १८ श्लोक ६६ के अनुसार तो वेदपाठ भी अनर्थक सिद्ध होता है। इसी खण्ड के उत्तरार्द्ध के ७४ वें अध्याय में कृष्ण नन्द से एक आन्हिक का कथन करते हैं, जिसे श्रुतियों ने भी नहीं सुना,[४] यह ज्ञान इतना अद्‌भुत है जो पुराणों और वेदों में भी दुर्लभ है।[५] इससे अधिक वेद निंदा और क्या हो सकती है ?

ब्रह्मवैवर्त की समाप्ति पर जो पुराण का माहात्म्य कथन किया गया है, उससे भी वेद निंदा की ध्वनि ही स्पष्ट प्रतिभासित होती है। कृष्ण-जन्म खण्ड उत्तरार्द्ध के अन्तिम १३३ वें अध्याय में कहा गया है—

चतुर्णामपि वेदानां पाठादपि वरम् फलम् ॥ १३३ । ४५ ॥

अर्थात् चारों वेदों के पाठ से भी इस पुराण के पाठ का फल अधिक है। पुराणों ने इसी प्रकार के अतिशयोक्ति पूर्ण कथन रच-रच कर वेदों की महिमा कम की है। जब एक व्यक्ति पुराण पढ़कर ही अभीष्ट फल प्राप्त कर सकता है तो वह वेदाध्ययन जैसा दुरूह परन्तु आवश्यक और परम पवित्र कार्य क्यों करने लगा ? निश्चय ही पौराणिक धर्मोक्त इस प्रकार के माहात्म्य कथन वैदिक विचारधारा और परम्परा के प्रतिकूल हैं।

---

३. न यत्र साक्षाद्विधयो न निषेधाः श्रुतौ स्मृतौ।
देशाचारं कुलाचारं स्तत्र धर्मो निरुप्यते ॥

स्कन्दपुराण वेदपाठो ऽप्यनर्थकः।

४. श्रुतिभिर्न श्रुतं हियत् ॥ कृ० जं० ख० उ० ७४ । २६

५. सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥ कृ० जं० उ० ७५ । १

यह बात नहीं कि इस पुराण में वेदों के सर्वोपरि महत्व को स्वीकार किया गया हो। स्थान-स्थान पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो वेदों के प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव जाग्रत करते हैं। गणपति खण्ड के ४४ वें अध्याय में कहा है :— नास्ति वेदात् परम् शास्त्रम् ॥ ४४ । ७२ ॥

वेद से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है। कृष्ण जन्म खण्ड उत्तरार्द्ध के ७३ वें अध्याय में जहाँ गीत की नकल पर विभूति कथन किया गया है वहाँ 'वेदाश्च सर्व शास्त्राणां' कहकर शास्त्रों में वेदों का सर्वोपरि महत्व माना गया है। इसी खण्ड के ८७ वें अध्याय में धर्म उसी को कहा गया है जो वेद प्रतिपादित है और वेद विरुद्ध को अधर्म कहा गया है :— वेद प्रणिहितोधर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय ॥ ५६ ॥

परन्तु इस प्रकार के कथन तो सामान्यतया सभी हिन्दू शास्त्रों में मिलते हैं। वेदों की सर्वोपरि प्रकृष्टता सभी मतों, सम्प्रदायों और आचार्यों ने स्वीकार की है। वेद प्रशंसा लिखकर भी उपर्युक्त उद्धरणों द्वारा सिद्ध जो वेद निन्दा इस पुराणकार ने की है, वह उसके लेख में वदतोव्याघात का दोष उत्पन्न करती है।

वेद विषयक एक और विशिष्टता इस पुराण में हमें लक्षित होती है। इसका लेखक जो कोई भी है, यह जानता है कि मेरी ये बातें जो मैं लिख रहा हूँ तब तक मान्य और प्रामाणिक नहीं होंगी, जब तक कि उनकी वेदोक्तता सिद्ध न कर दूँ। इसलिये उसने अपने प्रत्येक कथन को किसी न किसी वैदिक संहिता या शाखा में उक्त कहा है। शायद जिस युग में यह पुराण लिखा गया था, उस समय वेद विषयक अध्ययन और चर्चा लगभग समाप्त हो चुकी थी, तभी तो इस पुराणकार को यह साहस हुआ कि मैं जो कुछ लिखूंगा उसे आसानी से वेद के मत्थे मढ़ सकूँगा। ऐसा कौन है जो मेरे कथन पर शङ्का करेगा या इतना कष्ट करेगा कि वेद की तत्-तत् शाखा या संहिता में इस प्रसंग को ढूंढ़ेगा। परन्तु आज जब कि हम वेदों की सभी उपलब्ध शाखाओं और संहिताओं से परिचय रखते हैं, उसके इस कथन की सहज ही

जाँच कर सकते हैं और तब हमें ज्ञात होता है कि इस पुराण के लेखक ने वेद के नाम पर दुनियाँ को जिस प्रकार प्रवञ्चित किया है, वह अभूतपूर्व है। पाठक निम्न उदाहरणों को देखें :—

ध्यानं च सामवेदोक्तं मंगलानां च मंगलम्।

कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च ॥ प्र० ५५ । ६ ॥

राधा का यह ध्यान जिसके द्वारा कृष्ण ने उसकी पूजा की। सामवेदोक्त बताया गया है? क्या कोई माई का लाल पौराणिक राधा के इस पुराणोक्त ध्यान को सामवेद में अथवा उसकी किसी शाखा में दिखला सकता है?

इसी प्रकार के अन्यान्य उल्लेख भी पाठकों के मनोरंजन के दिये जा रहे हैं :—

विनायक के कवच के लिये गणपति खण्ड में लिखा है :—

उक्त कौथुम शाखायां सामवेदे मनोहरम् ॥ १३ । ६४ ॥

अब सभी सामवेदी इस कवच को कौथुम शाखा में ढूँढ़े, यदि मिल जाय तो हमें सूचित करें। इसी खण्ड के २२ वें अध्याय में महालक्ष्मी के ध्यान को सामवेदोक्त कहा :—

ध्यानम् च सामवेदोक्तं गोपनीय सुदुलर्भम् ।। २२ । २० ॥

३८ वें अध्याय के ४६ वें श्लोक में भी लक्ष्मी के एक ध्यान को सामवेदोक्त कहा गया है। इसी खण्ड के ३५ वें अध्याय में शङ्कर कवच को यजुर्वेद की काण्व शाखा में वर्णित बताया गया है। और उसके माहात्म्य में कहा गया है कि सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी इस कवच की सोलहवीं कला को प्राप्त नहीं करते। वैदिक यज्ञ यागों की तुलना में पुराणों के स्तोत्र, कवच और ध्यानों का माहात्म्य बताना ही इस कथन का लक्ष्य हैं :—

कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥ १३६ ॥

अश्वमेध सहस्राणि राजसूय शतानि च।

कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १३७ ॥

भला कोई यजुर्वेद की काण्व शाखा का विज्ञ विद्वान् इस कवच को उक्त शाखा में ढूँढ़ निकलेगा ?

गणपति खण्ड के ही ४५ वें अध्याय में विष्णुराम को काण्व शाखोक्त विधि से दुर्गा की स्तुति करने का आदेश देते हैं :—

काण्वशाखोक्त विधिना स्तुति दुर्गां जगत्प्रसूम् ॥ ४४ । ३ ॥

परन्तु आज तक कोई यह नहीं बता सका कि काण्व शाखा में दुर्गा स्तुति की विधि कहाँ लिखी हुई है ? कृष्ण जन्म खण्ड (पू०) के १७ वें अध्याय में नारद नारायण से कहते हैं :—

"श्रुतं नाम्नां सहस्रं च सामवेदे निरूपितम् ।
तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश" ॥ २१७ ॥

मैंने सामवेद में निरूपित राधा के सहस्र नाम सुने हैं। अब आप से उसी राधा के १६ नाम सुनना चाहता हूँ। क्या आज के पौराणिक विद्वानों ने यह पता लगाया है कि सामवेद में राधा के सहस्र नाम कहां वर्णित हैं ? क्या कोई यह नूतन अनुसंधान कर पुराण के इस कवच का सत्य सिद्ध करेगा ? इसी खण्ड के २५ वें अध्याय में दुर्वासा ऋषि विष्णु के एक स्तोत्र का पाठ करते हैं और उसे सामवेदोक्त कहते हैं।[1] इस स्तोत्र को भी सामवेद में पठित कथन करना उतना ही असत्य है जितना कि इससे पूर्व उल्लिखित कथनों को वेदोक्त कहना। आगामी २६ वें अध्याय में कृष्ण का एक ध्यान साम-वेदोक्त कहा गया है :—

सामवेदोक्त ध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् ॥ ५३ ॥

कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। हिमालय पार्वती को शिव के लिये प्रदान कर माध्यनिन्दनोक्त स्तोत्र से शङ्कर स्तुति करते है :—

हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारं चकार तम् ।
माध्यंदिनोक्त स्तोत्रेण तुष्टाव संपुटाञ्जलि ॥ ४४ । ६२ ॥

बृहस्पति इन्द्रपत्नी शची से कहते हैं :—

---

१. दुर्वाससा कृतं स्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः पुण्यदं सामवेदोक्तं । आदि !

यथाग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् ।
इतीदं काण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः ॥ ६६ । ४ ॥

यह सत्य कि बृहस्पति ने पुत्र और शिष्य को जो तुल्यता प्रदान की है वह नितान्त समुचित है, परन्तु इस कथन को ब्रह्मा द्वारा काण्व शाखा में वर्णित बताना पुराणकार का दुस्साहस मात्र है ।

कृष्ण जन्म खण्ड उत्तरार्द्ध में श्रीकृष्ण अपने पालक पिता नन्द को बहुत कुछ उपदेश देते हैं । इसी प्रसङ्ग में एक स्थान पर वे कहते हैं—वेदों में सामवेद सर्व कर्मों में प्रशस्त है, उसमें भी कण्व शाखा के मनोहर पुण्य कांड में स्वप्नाध्याय वर्णित है, जिसमें अच्छे और बुरे सभी स्वप्नों का शुभाशुभ फल वर्णित है ।[1] अब प्रश्न यह है कि सामवेद की प्रथम तो कण्व शाखा है कहाँ ? यदि वादितोष न्याय से मान भी लिया जाय कि 'सहस्रवर्त्मा' सामवेद की एक काण्व शाखा भी थी, जो आज उपलब्ध नहीं तो क्या उसमें उक्त स्वप्नाध्याय भी था ? अथवा यह सारा पौराणिक प्रपञ्च व्यर्थ में ही वेदों के सिर मढ़ा गया है ?

इसी खण्ड के ७८ वें अध्याय में 'ओं सर्वेश्वराय सर्व विघ्न विनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा' यह मन्त्र सामवेद में कथित बताया गया है । इस कथन को विशुद्ध गप्प के सिवा और क्या कहें ? ८७ वें अध्याय में जहाँ वासुदेव शब्द की व्युत्पत्ति बताई गई है, वहाँ यह भी लिखा है कि यह वासुदेव नाम चारों वेदों में दिखाई पड़ता है :—

वासुदेव तन्नाम वेदेषु च चतुर्षु च ।
पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते ॥ ३१ ॥

प्रचलित पुराणों में चाहे 'वासुदेव' नाम का उल्लेख मिलता है, परन्तु उसे वेदों में उल्लिखित बताना तो सत्य का अपलाप करना ही है । इसी प्रकार ६७ वें अध्याय में राधा का कृष्ण के सहस्र नामों का वेद की कौथुम शाखा में उल्लेख मानना भी इसी प्रकार का असत्य है, जिसे किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

ब्रह्मवैवर्त में देव निंदा

प्रचलित पुराणों में अपने ही मान्य देवो देवताओं की निन्दा यत्र तत्र सर्वत्र भरी पड़ी है। पुराणों के समर्थक अक्सर यह कहा करते हैं कि इस तथाकथित देव निन्दा को वास्तविक न समझकर आपाततः प्रतीत होने वाली ही समझना चाहिये, क्योंकि उनके मतानुसार विभिन्न पुराणों में अधिकारी और उपासना भेद से भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुति का उल्लेख मिलता है तथा उन्हीं प्रसङ्गों में अन्यान्य देवताओं की निन्दा भी मिलती है, जो वास्तविक न होकर औपचारिक मात्र है। परन्तु इतना कहने मात्र से ही पुराणों पर लगाये जाने वाले देव निन्दा के आक्षेप का समाधान नहीं हो जाता। निम्न उदाहरणों में पाठक देखेंगे कि अपने ही मान्य देवताओं पर कीचड़ उछालने का कितना निकृष्ट प्रयास पुराणकारों ने किया है।

ब्रह्मा पर स्वपुत्री-गमन का लांछन

पुराणों के अनुसार चरित्र की दृष्टि से ब्रह्माजी सबसे अधिक दुर्बल सिद्ध होते हैं। किसी भी सुन्दर युवती स्त्री को देखकर वे अपने मन का नियन्त्रण खो बैठते हैं—सृष्टि निरूपण प्रसङ्ग (प्रकृति खण्ड अध्याय ४) में लिखा है : —

त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि ॥ ३५। ५२॥

तुम स्वयं वेदकर्ता होकर कन्या से बलात्कार करना चाहते हो। ऐसा लगता है कि वेद और देव द्वेषियों ने ही इन कथाओं को गढ़कर हमारे धर्म को विकृत करने का क्षुद्र प्रयास किया है।

विष्णु निन्दा

यद्यपि ब्रह्मवैवर्त की गणना वैष्णव पुराणों में होती है, परन्तु देवाधिदेव विष्णु को भी इस पुराण में अत्यन्त कुत्सित रूप में चित्रित

---

१. वेदेषु सामवेदश्च प्रशस्तः सर्वकर्मसु। तथैव कण्वशाखायां पुण्यकाण्डे मनोहरे। स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यफलप्रदम् ॥ आदि ७७।२।४॥

किया गया है। वराह रूप में विष्णु ने पृथ्वी के साथ रति क्रीड़ा की, यहाँ विष्णु को 'कामुक' (प्रकृति खण्ड ८। २६) कहा गया है। जिसके संभोग स्पर्श मात्र से ही सुन्दरी पृथ्वी मूर्छित हो गई। इस प्रकार के शृङ्गाराविष्ट वर्णनों का इस पुराण में बाहुल्य है। विष्णु का तुलसी से छल पूर्वक बलात्कार भी इस पुराण में वर्णित है। विष्णु स्वयं तुलसी के पति शङ्खचूड़ का रूप धारण कर गये और माया पूर्वक उसमें वीर्याधान किया :—

शङ्खचूड़स्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति।
गत्वा तस्यां मायया च वीर्यधानं चकार ॥प्र० २०।१२॥

परन्तु तुलसी भी जान गई कि यह मेरे पति का रूप धारण कर कोई अन्य पुरुष ही मुझसे रमण कर रहा है।

सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्।
सर्वं वितर्कयामास करत्वनेवेत्युवाच ह ॥ २१ । १७ ॥

जब उसे ज्ञात हुआ कि छल से उसके पति की हत्या करके उसका धर्मभ्रष्ट किया गया है तो वह विष्णु को शाप देती है :—

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च।
छलेन धर्मभंगेन मम स्वामी त्वया हतः॥
पाषाण सदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो।
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना ॥ प्र० २१।२३।२४ ॥

चूंकि आपने छलपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट किया है और आप पाषाण सदृश दयाहीन है, अतः मैं आपको पाषाण रूपी हो जाने का ही शाप देती हूँ। शालग्राम शिला के रूप में विष्णु के पूजे जाने का यही रहस्य है। जिस शङ्खचूड दैत्य को विष्णु ने छल पूर्वक मारा उसकी अस्थियों से शङ्ख जाति उत्पन्न हुई :—

"अस्थिभिः शङ्खचूड़स्य शङ्ख जाति बभूव ह" २०।२८॥

यह पुराणों का अद्भुत प्राणिविज्ञान है। शङ्ख को हरि का अधिष्ठान बताया गया है और यह भी कहा गया है :—

"यत्र शङ्खस्ततो हरिः।" २०। २६॥

मानो ईश्वर की सर्वव्यापकता का निषेध कर उसे शङ्ख तक ही सीमित कर दिया गया है। पुराणों के इस प्रकार के उपहासास्पद उल्लेखों की समीक्षा करना भी व्यर्थ है।

शिव निन्दा

शिव निंदा में भी यह पुराण किसी प्रकार कम नहीं है। कहते हैं कि कुमारसम्भव में पार्वती परमेश्वर के संभोग शृङ्गार का नग्न वर्णन करने के फलस्वरूप कालिदास को कोढ़ हो गया था। यदि यह बात सत्य हो तो अपने पूज्य देवताओं की रति का जितना वीभत्स और खुला वर्णन पुराणों में हुआ है, उसे देखते हुये पुराणकारों के लिये तो कुष्ठ से भी भयङ्कर कोई रोग का दण्ड विधान होना चाहिये। गणपति खण्ड के प्रथम अध्याय में ही पार्वती और शङ्कर के जिस विहार का वर्णन हुआ है उसमें पुराणकार विपरीत रति का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं :—

'तयोर्बभूव शृङ्गारो विपरीतादिको महान्। ग०। १६॥

जिस जाति के देवता ही इस प्रकार के दुराचारी व लम्पट हों, उनसे संयम, नियम, ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षण की क्या शिक्षा ली जा सकती है। इतना ही नहीं। शिव को काम विभोर अवस्था में सर्वत्र चित्रित किया गया है। जब उनकी पूर्व पत्नी सती का देहान्त हो गया तो अत्यन्त कामातुर होकर शिव ने सती के मृत देह को ही अपने हृदय पर रख लिया। पुनः :—

"अधरे चाधरं दत्वा वक्षो वक्षसि शङ्करः।
पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्छामवाप सः॥श्री० पू० ४३।१७॥

अधरों पर अधर और वक्ष पर वक्ष शंकर ने उस मृतक शव का आलिंगन किया और पुनः मूर्छित हो गये। जिस व्यक्ति को मृत और जीवित का ही ज्ञान न हो और जो काम मोहित होकर इस प्रकार की गर्हित चेष्टायें करे, क्या वह हमारा जातीय आदर्श हो सकता है ? पार्वती से विवाह के अनन्तर शिव ने उससे जो महा

श्रृङ्गार आरंम्भ किया उसकी अवधि सहस्र वर्ष पर्यन्त बताई गई है।[1] यह घोर विलासिता से पूर्ण आदर्श ही ब्रह्मवैवर्त में सर्वत्र चित्रित किया गया है।

अन्य देव निंदा

देवत्रयी (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की पुराणकृत दुर्दशा को तो आप देख ही चुके। अब कुछ अन्य देवताओं के निन्दात्मक वर्णन पढ़िये। अगम्या-गमन और परदाराभिमर्षण में पुराण ने देवताओं को सर्वत्र लिप्त बताया है— विश्वकर्मा ने घृताची अप्सरा के प्रति ग्राम्य आचरण किया। ब्रह्मा खण्ड के १० वें अध्याय में हम पढ़ते हैं—

घृताची वचनं श्रुत्वा विश्वकर्माऽनिलाकृति।
जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम् ॥ ८५ ॥
चकार सुख संभोगं तया सह विजने वने।
पूर्णं द्वादशवर्षं च बुबुधे न दिवानिशिम् ॥ ८७ ॥

अर्थात् घृताची के वचन सुन कर वायु आकृति धारण किये विश्वकर्मा उसे लेकर चन्दन निर्मित गृह में गया और विजन वन में उसके साथ संभोग किया। बारह वर्ष पर्यन्त यह मैथुन कर्म चलता रहा।

विश्वकर्मा के अनन्तर अश्विनीकुमार के क्रिया कलाप पर दृष्टि-पात करें। इसी अध्याय में आगे लिखा है—

गच्छन्तीं तीर्थ यात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः।
ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्याने च निर्जने ॥१२७॥
तया निवारितो यत्नाद्बलेन बलवान्सुरः।
अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार स ॥१२८॥

एक कोई ब्राह्मणी बेचारी तीर्थयात्रा के लिये जा रही थी, उसे एक पुष्पोद्यान में इन कामुक अश्विनीकुमार ने देख लिया। उस बलवान देवता ने यत्न पूर्वक बलात्कार पकड़ कर अत्यन्त सुन्दरी

---

१. महाश्रृंगारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥ श्री० पु० ४६ । ४८ ॥

होने के कारण उसमें वीर्याधान कर दिया। मानो अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य न हुये कोई गुण्डे हुए। जिनका काम ही तीर्थ स्थलों पर आने वाली भोली भाली स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करना होता है। यदि ऐसे ही देवता पुराणों को इष्ट हैं तो हम उन्हें दूर से ही प्रणाम करते हैं। आज के युग में कोई व्यक्ति ऐसी कुचेष्टा करे तो वह पुलिस के हवाले कर दिया जायगा।

इन्द्र निन्दा

देवराज इन्द्र तो पुराणों में सर्वत्र कामी, द्वेषी और परदारा-लम्पट के रूप में चित्रित हुए हैं। अतः ब्रह्मवैवर्त में भी उनके चरित्र पर व्यभिचार का लाञ्छन लगाया गया तो उसमें आश्चर्य ही क्या ? गणपति खण्ड में इन्द्र का रम्भा के साथ बिहार वर्णित हुआ है। शृङ्गारिक प्रसङ्गों को लिखने में पुराणकार को कमाल हासिल है। जरा बानगी देखिये :—

ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः।
गृहीत्वा तां पुष्पे तल्पे विजहार तया सह॥
चुचुम्ब रहसि प्रौढां नग्नां च सुभगां वराम्।
पक्व बिम्बाधरौष्ठीं च सुदत्या चुम्बितस्तया॥
नाना प्रकार शृङ्गारान्विपरीतादिकान्मुने।
चकार कामो तत्रैव शृङ्गारो मूर्तिमानिव ॥२०।४४।४५।४६॥

अर्थात् कामशास्त्र-विशारद इन्द्र ने रम्भा का भाव जान लिया। पुष्प शय्या पर उसे ले जाकर उसके साथ बिहार किया। एकान्त में उस नग्न प्रौढ़ा पके हुये बिम्बाफल के समान होठों वाली तथा सुन्दर दाँतों वाली का चुम्बन किया। मूर्तिमान शृङ्गार के तुल्य उस कामी ने नाना प्रकार की विपरीतादि रति से युक्त शृङ्गार उससे किया। देवताओं को इस प्रकार सर्वत्र पुराणों में कामी और व्यभिचारी बताया गया है।

धर्म निंदा

अन्यान्य देवताओं की तो बात ही क्या, ब्रह्मवैवर्तपुराण में स्वयं धर्म को ही परदारा लम्पट बताया गया है। केदार कन्या वृन्दा को तपस्या में रत देखकर धर्म ने उससे तपस्या का प्रयोजन पूछा। वृन्दा ने बताया कि वह विष्णु भगवान् को अपना पति बनाने के लिये तपस्या कर रही है। इस पर धर्म ने एक लम्बा चौड़ा प्र चन किया व बताया कि कृष्ण रूपी परमात्मा के तो दो भार्यायें पूर्व से ही हैं—राधा और लक्ष्मी। अच्छा हो यदि तुम मुझे ही पति रूप में स्वीकार करलो। 'मां भजस्व महाभागे' (श्री कृष्ण उ० ८६। ८१।) यह प्रस्ताव करके ही धर्म से नहीं रहा गया, वह छल पूर्वक उससे संभोग करने की भी इच्छा करने लगा—

'इत्येवभुक्त्वा संभोक्तुम् तं छलेन च'॥ ८५। ८६॥

इस पर उक्त वृन्दा ने धर्म को बुरी तरह से फटकारा। इसी प्रसङ्ग में वृन्दा ने जो व्यभिचार निन्दा की है तथा उसके लिये जिस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है, हमारा विश्वास है कि कम से कम कोई भी कुमारी कन्या उस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग नहीं कर सकती। कामी पुरुष नरक कुण्ड में उसी प्रकार प्रवेश करता है जिस प्रकार—

यथा लिंगं विशत्येत्व पाप यौनौ च योषिताम्॥ ८६। ९३॥

तथा पुमान्विशत्येव रौरवे च युगे युगे॥ ८६। ९४॥

इस अश्लील पद का भाषा में अनुवाद करना भी कठिन है। परन्तु पुराणों की इन तथा कथित कन्याओं को ऐसे अश्लील वाक्य बोलने में कुछ भी लज्जा अनुभव नहीं होती। वृन्दा केवल धर्म की भर्त्सना करके ही नहीं रह गई, उसे क्षयी हो जाने का भी शाप दिया।

'क्षयो भव पुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव'॥ ८६। १०६॥

पुनः कृष्ण की प्रार्थना पर धर्म को जीवन प्रदान किया गया।

यह है पुराण कथित देव चरित्र। जिस जाति के देव चरित्र की इतनी प्रतारणा, लांछना और विकृति हो चुकी हो उसका पतन निश्चित है।

महापुरुष निन्दा

पुराणकार ने देव निन्दा तो की ही, महापुरुषों की निन्दा करने और उनके चरित्र को कलुषित करने में भी वे पीछे नहीं रहे। कृष्ण के अग्रज बलराम का उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। पौराणिक साहित्य में बलराम सर्वत्र मदिरा प्रेमी के रूप में चित्रित किये गये हैं। ब्रह्मवैवर्त भी इसका अपवाद नहीं है। बलराम का देखिये कितना सुन्दर परिचय दिया गया है—

तज्ज्येष्ठो बलदेवश्च शश्वत्पिबति वारुणी ।। श्री० उ० ११५।७२ ।।

अर्थात् कृष्ण के बड़े भाई बलराम हैं जो सदा शराब ही पीते रहते हैं। मानो शराबी के रूप में परिचय देकर बलदेव का पुराणकार ने प्रशस्तिपाठ किया है।

जैसा कि मैंने इस आलोचना की प्रस्तावना में कहा, ब्रह्मवैवर्त अन्य पुराणों से अपना वैशिष्ट्य इस बात में रखता है कि इसमें त्रिदेवों से भी कृष्ण को अधिक महत्व दिया गया है और कृष्ण से ही उनकी उत्पत्ति बताई गई है। ब्रह्मखण्ड के सृष्टि निरूपण शीर्षक प्रसङ्ग में इस विषय का वर्णन है। इस पुराण ने त्रिदेवों के महत्व को समाप्त कर कृष्ण की सर्वोपरि महत्ता स्थापित की है। इस दृष्टि से पुराण परस्पर विरोधी सिद्धान्त रखते हैं। वैष्णव पुराणों ने ब्रह्मा और शिव की महत्ता को न्यून कर विष्णु के महत्व को स्थापित किया और शैव पुराणों में एक मात्र शिव ही सर्वश्रेष्ठ माने गये। भविष्य पुराण में सर्वोपरि देवता सूर्य माने गये हैं और देवी भागवत में देवी के इङ्गित मात्र से ही त्रिदेव सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। ब्रह्मवैवर्त में यह महत्वपूर्ण स्थान केवल कृष्ण को

ही मिला है। प्रकृति खण्ड में तो ब्रह्मा, विष्णु आदि का अन्यान्य सामान्य जीवों की भाँति प्रलय काल में नष्ट होना बताया गया है:—

प्रलय: प्राकृतो ज्ञेयस्तत्राऽदृष्टा वसुन्धरा।
जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मा विष्णु शिवादया ॥ ७। ७६ ॥

अर्थात् प्राकृत प्रलय वह है जिसमें पृथ्वी भी अदृश्य हो जाती है और ब्रह्मा, विष्णु, शिव जल में डूब जाते हैं। जब इन देवताओं की भी नश्वरता ही पुराणकार को इष्ट है, तो उन्हें उपास्य मानने से मानव का क्या कल्याण हो सकता है। सृष्टि निरूपण प्रकरण में चराचर जगत् की उत्पत्ति कृष्ण के शरीर से ही बताई है, वहाँ देवताओं के कोषाध्यक्ष बेचारे कुबेर के लिये जो उत्पत्ति स्थान बताया है, उस पर पौराणिक बन्धु गौर फरमायें—

आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्तत: परम्।
पिंगलश्च पुमानेक: पिंगलैश्च गणैसह ॥

आविर्भूता यतो गुह्यातेन गुह्यका: स्मृता: ॥ ब्र० ५।६०।६१॥

यक्षों के लिये गुह्यक शब्द का जो प्रयोग होता है उसकी कैसी विचित्र व्युत्पत्ति पुराणकार को सूझी है, यह सचमुच दाद देने काबिल है। अन्य देवताओं की तो बात क्या, स्वयं विष्णु भी कृष्ण के आधे अंश के ही तुल्य हैं—

तत्र नारायणो देव: कृष्णार्द्धाश्चतुर्भुज: ॥ गणेश० ४२। ६२ ॥

अब देखना यह है कि राधा और कृष्ण के जिस विचित्र सम्बन्ध का वर्णन करना ही इस पुराणकार का मुख्य अभिप्राय है वह सम्बन्ध किन-किन असङ्गतियों, अस्वाभाविकताओं से परिपूर्ण है और उसने कृष्ण के उदात्त, निर्मल और पवित्र चरित्र को कलुषित करने में कितना योग दिया है।

राधा की उत्पत्ति और कृष्ण राधा का चतुर्विध संबन्ध

इस पुराण के अनुसार राधा कृष्ण की अधिष्ठात्री शक्ति है। उसका कृष्ण से उसी प्रकार का अविभाज्य सम्बन्ध है, जैसा सांख्य शास्त्र में वर्णित प्रकृति का पुरुष से। आश्चर्य की बात यह है कि पुराणों के जो नवीन व्याख्याकार राधा कृष्ण के पुराणवर्णित प्रसङ्गों का समाधान स्वकल्पित युक्तियों के आधार पर करना चाहते हैं वे ऐसा करते समय यह भूल जाते हैं कि इस पुराण में तो राधा कृष्ण का जो घोर शृङ्गारपूर्ण चित्र अङ्कित किया गया है वह इतना अश्लील, बीभत्स और ग्राम्य है कि उस पर आध्यात्मिकता, अलौकिकता और दिव्यता का कितना ही मुलम्मा क्यों न चढ़ाया जाय, उससे उसकी वास्तविकता नहीं छिपती। आगे के विवेचन से यह सब स्वत: स्पष्ट हो जायगा।

आज से कई वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पण्डित नारायणप्रसाद 'बेताब' ने 'राधा कृष्ण का नाता' शीर्षक से एक छोटा सा ट्रैक्ट लिखा था। उसमें अत्यन्त मनोरंजक शैली में राधा और कृष्ण के परस्पर पिता पुत्री, माता पुत्र, पति पत्नी और भाभी और ननद के पुत्र के सम्बन्ध ब्रह्मवैवर्त के आधार पर ही सिद्ध किये गये थे। अपने लेख के अन्त में लेखक अत्यन्त विनम्र भाव से भगवान् कृष्ण से पूछते हैं कि कृपा कर बतायें, इनमें से आपका राधा से कौन सा सम्बन्ध था, क्या ये सभी सत्य हैं, या सभी असत्य, अथवा इनमें से एक सत्य है और शेष तीन असत्य। निष्कर्ष रूप में लेखक ने यही सिद्ध किया है कि राधा का वर्णन और कृष्ण से उसका सम्बन्ध यह सम्पूर्ण प्रसङ्ग ही काल्पनिक है और केवल ब्रह्मवैवर्त में ही इसका उल्लेख है।

राधा—कृष्ण पुत्री

हम भी इसी पुराण के आधार पर इस मीमांसा में प्रवृत्त होते हैं। ब्रह्मखण्ड के पांचवें अध्याय में राधा की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है—

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः ॥ २५ ॥
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्श्वजोत्तम ॥ २६ ॥

अर्थात् कृष्ण के वामपार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई, पुराकल्प को जाने वाले ब्राह्मणों ने उसे राधा नाम दिया। अगले श्लोक में उसे कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री देवी कहा गया है और उसे कृष्ण के प्राणों से उत्पन्न बताया है—

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविबर्भूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २७ ॥

अब पुराण में वदतोव्याघात का दोष तो स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। वामपार्श्व से राधा की उत्पत्ति कहकर तुरन्त उसे प्राणों से उत्पन्न बताना इन पंक्तियों के लेखक की उन्मत्तता का सूचक है। पार्श्व और प्राण कोई एक पदार्थ तो है नहीं। अवश्य ही पुराणकार विजयासेवन करते होंगे, तभी तो उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं रहता कि वे अभी क्या लिख आये हैं और अब क्या लिख रहे हैं।

यही राधा जो गोलोक में कृष्ण की शाश्वत सङ्गिनी के रूप में रहती है, श्री दामा के शाप के कारण मृत्यु लोक में वृषभानु गोप की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुई। यहाँ उसकी माता का नाम कलावती था—

वृषभानु सुता सा च माता तस्याः कलावती ॥ कृष्ण० पू० १३। ६२ ॥

यहाँ भी इसे कृष्ण का अर्द्धांश से उत्पन्न कहा गया है—

श्रीकृष्णार्धांशसंभूता तेन तुल्या च तेजसा ॥ कृ० पू० १७। २६ ॥

यही बात अन्यत्र भी श्री कृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय १७। २२६ अध्याय ४१। ७२, उत्तरार्द्ध अध्याय १२४। ६४ में भी

दुहराई गई गई है। इस वर्णन को देखते हुये यदि पं० बेताब ने राधा को कृष्ण की पुत्री ठहराया तो हमें कोई अनौचित्य प्रतीत नहीं होता। पुत्री को 'अङ्गजा' ही कहते हैं और उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हुआ कि राधा कृष्ण के ही अङ्ग से उसी प्रकार उत्पन्न हुई थी जिस प्रकार आदम को पसली से हौआ की उत्पत्ति सैमेटिक मतों में मानी जाती है। फिर इस पिता पुत्री के सम्बन्ध में शृङ्गार का आरोपण क्यों किया गया ?

राधा—कृष्ण-पत्नी

अब हम उन प्रसङ्गों को देखें जिनमें कृष्ण की पत्नी के रूप में राधा का उल्लेख हुआ है। प्रकृति खण्ड के ४८ वें अध्याय में महादेव राधा को कृष्ण की पत्नी कहते हैं— "स्वयं राधा कृष्ण पत्नी कृष्णवक्षः स्थलास्थिता ॥" ४७ राधा और कृष्ण का विवाह स्वयं ब्रह्मा ने कराया, यह भी स्थान-स्थान पर वर्णित है। यथा—कृष्ण जन्म खण्ड पू० अध्याय १५ में राधा और कृष्ण के विवाह का विस्तृत वर्णन है, जिसमें हवन, यज्ञप्रदक्षिणा, पाणिग्रहण आदि सभी वैवाहिक क्रियाओं का उल्लेख हुआ है। अब किसी को यह शङ्का नहीं रह जानी चाहिये कि राधा का कृष्ण से वेदोक्त विधि से विवाह नहीं हुआ। बाणासुर के आक्षेपों का उत्तर देते हुए श्री कृष्ण खण्ड उत्तरार्द्ध अध्याय ११५ में अनिरुद्ध राधा कृष्ण के विवाह में ब्रह्मा का पुरोहित होना स्वीकार करते हैं—

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥८८॥

सिद्ध हुआ कि राधा कृष्ण की विवाहिता पत्नी थी।

राधा—कृष्ण-मामी

अब तीसरे प्रकार के सम्बन्ध को देखें। प्रकृति खण्ड अध्याय ४९ ४९ में निम्न श्लोक मिलते हैं—

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ॥ ३५ ॥

वाराह कल्प में राधा गोकुल में गई और वहाँ वृषभानु वैश्य की कन्या बनी।

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् ।
सार्द्धं रायण वैश्येन तत्सम्बन्धं चकार स ॥ ३७ ॥

जब वह १२ वर्ष की होकर यौवन को प्राप्त हुई तो रायण वैश्य के साथ उसका सम्बन्ध कर दिया। यह रायण कौन था ?

कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धाकृष्णमातुलः ॥ ४० ॥

कृष्ण की माता यशोदा का भाई रायण था, जो गोलोक में तो कृष्ण का ही अंशभूत एक गोप था, परन्तु यहाँ मर्त्यलोक में कृष्ण का मामा था।

यहाँ पुराणकार ने एक चालाकी अवश्य की है। यदि वह प्रकटतः एक ओर तो रायण को राधा का विवाहित पति बताता और उधर ब्रह्मा द्वारा कृष्ण के साथ राधा का विवाह होना भी लिखता तो राधा का बहुपतित्व स्वतः ही सिद्ध हो जाता। सम्भवतः इसी लांछन को दूर करने के लिये उसने 'छाया राधा' की कल्पना की। इसी अध्याय में ३८ वाँ श्लोक है—

छायां संस्थाप्य तद्देहे साऽन्तर्ध्यानमवापह ।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥

वह राधा अपनी छाया को घर में रखकर स्वयं अन्तर्ध्यान हो गई, उसी छाया के साथ रायण का विवाह हुआ। इसी 'छाया राधा' की कल्पना के बल पर ही पौराणिक मत की डूबती नौका को बचाने में संलग्न पं० दीनानाथ शास्त्री 'सारस्वत' ने सनातनधर्मालोक के छठे पुष्प में राधा कृष्ण की इस पुराण वर्णित कलङ्कित गाथा के मार्जन का असफल प्रयास किया है। उनके अनुसार वास्तविक राधा तो कृष्ण के साथ रही और छाया ही रायण की पत्नी बनी।

स्वयं राधाः हरेः क्रोडे छाया रायण मन्दिरे ॥४२॥

कृष्ण जन्म उत्तर खण्ड में भी इसी प्रकार का उल्लेख निम्न श्लोको में आया है। वहाँ स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं—

मत्कलांशश्च रायणास्त्वां विवाहे ग्रहीष्यति ।। ८६ । ३६ ।।
त्रिवाहकाले रायणस्त्वां च छायां ग्रहीष्यति ।। ३८ ।।

मेरा कला का ही अंश रायण तुम्हें ग्रहण करेगा, तुम्हें नहीं बल्कि तुम्हारी छाया को। फलतः

"स्वयं राधा ममक्रोडे छाया रायाण कामिनी ।।" ८६।४०।।

राधा तो मेरे वक्ष पर ही रहेगी केवल उसकी छाया ही रायाण की पत्नी बनेगी। स्वयं राधा भी उक्त खण्ड के १११ वें अध्याय में कहती है—

अहमेव स्वयं राधा छाया रायाणकामिनी ।। ५७ ।।

मैं ही राधा हूँ, रायण पत्नी तो मेरी छाया ही है। अब यहाँ दो बातें वक्तव्य हैं—प्रथम तो रायण बेचारे को धोखे में रक्खा गया। उसे वास्तविक राधा के स्थान पर उसकी छाया से ही संतोष करना पड़ा। छाया राधा से उसके पति ने किस प्रकार दाम्पत्य सुख अनुभव किया होगा। यह पौराणिकों के लिये अन्वेषणीय है। कृष्ण का भी यहाँ छल पूर्ण आचरण स्पष्ट प्रकट होता है। उन्होंने वास्तविक राधा को तो अपनी प्रिया बनाया और छाया का विवाह रायण से करा दिया। परन्तु कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि 'छाया राधा' का प्रपञ्च इसलिये खड़ा किया गया है कि इससे कृष्ण के मातुल्य-पत्नी गमन के अपराध का परिमार्जन किया जा सके। उक्त अपराध का मार्जन कितना हुआ या नहीं हुआ यह तो सारस्वत जी जैसे पुराणों की मिथ्या गाथाओं पर विश्वास करने वालों के लिये सोचने का विषय है, परन्तु हमें तो यही कहना है कि यह सम्पूर्ण कथा ही काल्पनिक है। जब राधा ही पुराणकारों के कल्पना विलास से उत्पन्न हुई है तो 'छाया राधा' की स्थिति भी वैसी ही ठहरी। हमें इस विश्लेषण से कोई प्रयोजन नहीं।

राधा — कृष्ण-माता

राधा और कृष्ण को एक अन्य विचित्र स्थिति में भी पुराणकार ने चित्रित किया है। उस समय कृष्ण छोटे बालक ही थे। एक बार नन्द उन्हें लेकर भाण्डोर वन में गोचारण के लिये गये। वहाँ अचानक ही आकाश मेघावृत्त हो गया और झञ्झावात का शब्द सुनाई पड़ने लगा। मूसलाधार वृष्टि भी होने लगी, तब नन्द को यह चिंता हुई कि बालक कृष्ण को सुरक्षित रूप से घर तक कैसे पहुँचाया जाय। अचानक राधा वहाँ आ पहुँची। नन्द ने रोते हुये बाल कृष्ण को राधा को दे दिया[1] —राधा कृष्ण को लेकर चली गई। अब विचार की बात यह है कि राधा पूर्ण रूपयौवन सम्पन्न युवती है और कृष्ण उसकी गोद में पुत्र के तुल्य हैं। क्या यह माता और पुत्र का सा सम्बन्ध नहीं है? परन्तु पुराणकार को इतना लिखकर ही संतोष नहीं हुआ। उसने आगे जो कुछ लिखा उसका सार यह है।

राधा ने कृष्ण को गोद लेकर काम वासना का अनुभव किया। उसका शरीर रतिभाव के उत्पन्न होने से कंटकित हो गया। तुरन्त उसने रासमण्डल को स्मरण किया। जिसके फलस्वरूप एक रासमण्डप स्वतः ही बन गया और उसमें सभी प्रकार की वासनोत्तेजक सामग्रियाँ उपस्थित हो गईं। बालक कृष्ण भी एक परम रूपवान् नवयुवक के रूप में परिवर्तित हो गये और उसके पश्चात्......जो कुछ होना था वही हुआ। यहाँ पुराणकार खुल कर खेला है। राधा कृष्ण का जो सम्भोग वर्णन इस पुराण में मिलता है वह अपनी अश्लीलता, और ग्राम्यवर्णनों की दृष्टि से अद्वितीय है। जो लोग ऐसे-ऐसे गर्हित और शिष्ट रुचि के प्रतिकूल वर्णनों को पुराणों में देखते हुए भी पुराणों के व्यासकृत होने का आग्रह करते हैं, उनकी बुद्धि पर तरस आता है। ब्रह्मवैवर्त में तो ऐसे वर्णनों की बाढ़ ही आ गई है। इनका यत्किञ्चित् निर्देश करने से ही पाठक अनुमान लगा लेंगे और उन्हें निश्चय हो जायगा कि इस

१. इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया ॥ श्री० पृ० १५। २६॥

पुराण को तो धर्म शास्त्र कहने की अपेक्षा कामशास्त्र का ग्रन्थ कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। इसी अध्याय के कुछ श्लोकांश नमूने के लिये प्रस्तुत हैं—

करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ।। १४८ ।।

कृष्ण ने राधा को हाथ से पकड़ कर अपने वक्ष से लगा लिया और उसके वस्त्र शिथिल कर उसका चतुर्विध चुम्बन लिया।

बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका।
चुम्बनेनोष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ।। १४९ ।।

जो रति युद्ध हुआ उससे करधनी टूट गई। चुम्बन से अधरों का रङ्ग उड़ गया और आलिगन से पत्रावली नष्ट हो गई।

मूर्छामवाप सा राधा बुबुधेन दिवानिशम् ।। १५१ ।।

यवसङ्गम से राधा मूर्छित हो गई ओर रात दिन तक उसे होश ही नहीं आया।

शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ।। १५२ ।।

काम शास्त्र के जानने वाले कृष्ण ने आठ प्रकार का शृङ्गार किया।

पाठक नोट करें ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण कामशास्त्र के आचार्य हैं। वे न तो गीता के कृष्ण की भांति आध्यात्मतत्व के ही उपदेष्टा हैं और न महाभारत के कृष्ण की भांति राजनीति के ही आचार्य। फिर भला आज ये पुराणवर्णित कृष्ण हमारे आदर्श किस प्रकार हो सकते हैं। यह तो प्रसङ्गान्तर की बात हुई। संभोगान्तर कृष्ण ने पुनः शिशु रूप धारण कर लिया—

"बभूव शिशुरूपं च कैशोरं च विहाय च ।।" १६३ ।।

उसी बालक को पुनः अपने अङ्क में लेकर राधा यशोदा के निकट गई और बोली—

"गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ।।" १७५ ।।

हे कल्याणी, अपने बालक को लो और स्तन्यपान कराकर सावधान करो। अब कोई भी व्यक्ति यह निर्णय कर सकता है कि

राधा ने मातृतुल्य कृष्ण को अपनी गोद में लेकर उसके प्रति वात्सल्य का भाव प्रकट किया और नन्द से कृष्ण को लेने और वापिस उसे यशोदा को लौटाने तक की अवधि में एक विचित्र संभोग काण्ड भी घटित हो गया, जिसका संकेत ऊपर दिया जा चुका है। सम्भवतः साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने ऐसे ही प्रसङ्गों को रसाभास की संज्ञा प्रदान की है जहाँ परस्पर विरोधो रसों को एक साथ ही प्रस्तुत किया जाता है।

गोलोक की स्थिति

यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि कृष्ण अपनी पराशक्ति राधा के साथ तथा अन्य गोपियों के साथ गोलोक में निवास करते हैं। यह गोलोक वैकुण्ठ (जो विष्णु का लोक है) से ५०० कोटि योजन ऊपर है, जहाँ कृष्ण गोप-गोपी, के साथ रहते हैं—

ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात् पञ्चाशत् कोटि योजनात्।
ममाश्रयश्च गोलोको यत्राहं गोपिकापतिः ॥

—गण० ७। ७७॥

इसी खण्ड के ४२ वें अध्याय में गोलोक को वैकुण्ठ से ५०० करोड़ योजन ऊपर बताते हुये सर्वोच्च लोक बताया गया है, जिससे ऊँचा और कोई लोक नहीं है—

गोलोक ऊर्ध्वं वकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटि योजनः।
नास्ति लोकस्तदूर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥प्रभु० ६८॥

कृष्ण विरजा प्रसङ्ग : कृष्ण की लम्पटता

यह बात भी नहीं कि कृष्ण का राधा के साथ एकान्तिक प्रेम इस पुराण में चित्रित किया गया हो। यदि ऐसा होता तो वही हमारे सन्तोष का कारण बनता और हम यह मान लेते कि प्रेम की एक निष्ठता का वर्णन करना ही पुराणकार का ध्येय है। परन्तु यहां तो कृष्ण को एक लम्पट पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है, जो राधा को प्रिया के रूप में पाकर भी सन्तुष्ट नहीं हैं वे उसकी एक अन्य सखी

विरजा से अपना रोमांस चलाते हैं। कृष्ण विरजा प्रसङ्ग को भी पुराणकार ने उतनी ही तल्लीनता से वर्णन किया है, जितना कृष्ण राधा प्रसङ्ग को। वह भी श्रृङ्गारिक भावनाओं का उद्रेक करने में पूर्व वर्णित प्रसङ्ग से किसी भी प्रकार कम नहीं है। एक बार कृष्ण ने राधा को त्याग कर विरजा को अपनी वासना का शिकार बनाया। निर्जन महारण्य में स्थित रत्नमण्डप की पुष्प शय्या पर उन्होंने विरजा के साथ संभोग किया, जिसके परिणाम स्वरूप वह मूर्छित हो गई।[1] उसी समय राधा आ गई और जब उसे इस कृष्ण विरजा काण्ड का पता चला तो वह तुरन्त घटनास्थल पर आई। परन्तु अपराधी उसके पहुँचने के पूर्व ही फरार हो चुके थे। श्रीकृष्ण तो अन्तर्धान हो गये और विरजा ने योग बल से शरीर त्याग कर नदी का रूप धारण कर लिया। कृष्ण ने जब अपनी इस प्रिया को नदी रूपा देखा तो उच्च स्वर में रोने लगे।[2] तो पुराणकार तो इसे भगवल्लीला ही मानेंगे। उसके पश्चात् कृष्ण की आज्ञा से विरजा पुनः नारी धारिणी होकर कृष्ण के साथ श्रृङ्गार क्रीड़ा में लीन हो गई। विरजा और कृष्ण का यह संभोग वर्णन भी नग्नता की दृष्टि से अद्वितीय है। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी जी का वक्तव्य द्रष्टव्य है—"भौतिक लीलाओं के वर्णन की नग्नता और कामुकता में यह कहना असम्भव है कि कौन किससे और कितना आगे बढ़ गया है।"[3]

कृष्ण को पर स्त्री में आसक्त देख कर राधा आपे से बाहर हो गई और कृष्ण को बुरा भला कहने लगी। उसने कृष्ण की शान में

---

१. मूर्छामवाप विरजा कृष्ण श्रृङ्गार कौतुकात् ॥ श्री कृष्ण ज० उ० पू० २। २६ ॥

२. श्री कृष्णो विरजां दृष्ट्वा सरिद्रूपां प्रिया सतीम् ।
उच्चं रूरोद विरजातीरे नीर मनोहरे ॥ श्री पू० ३। २ ॥

३. वहीं।

जो कुछ कहा, उसे सम्पूर्णतया यहाँ लिखना हमारा प्रयोजन नहीं है, परन्तु एक दो श्लोक नमूने के रूप में लिख देते हैं—

हे कृष्ण, विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे।
कथं दुनोषि मा लोल रतिचौरलम्पट ॥ ३ । ५६ ॥

हे विरजा के प्यारे कृष्ण मेरे निकट से दूर हो जाओ। हे रति चौर, लम्पट मुझे क्यों कष्ट देते हो? पुनः वह कृष्ण को भारत में मनुष्य रूप में जन्म लेने का शाप देती हुई अपनी सखियों को उसे हटा देने का आदेश देती है—

निवार्यताम् च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥ ३ । ६२ ॥

कृष्ण को बुरा भला कहने में अन्यत्र भी राधा कुछ कसर नहीं रखती। प्रकृति खण्ड के ११ वें अध्याय में जो गङ्गा सम्बन्धी उपाख्यान है, उसमें भी राधा कृष्ण को गङ्गा के साथ प्रेम करते देख कर फटकारती है। उसने तो कृष्ण को साफ-साफ चेतावनी देते हुए कहा—

संगृह्य मां प्रियामिष्टा गोलोकाद्गच्छ लम्पट।
अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति सुरेश्वर ॥ ११ । ४५ ॥

अपनी इस प्रिया को लेकर, हे लम्पट इस गोलोक से चले जाओ, अन्यथा अच्छा नहीं होगा। तिवारा जी ने ठीक ही लिखा है। "मृत्यु लोक में जैसे, वैसे ही स्वर्ग में भी सौतों में लड़ाई होती है और एक से अधिक पत्नियों के पति चाहे विष्णु ही हों, उनका जीवन इस सौतिया डाह के कारण कष्टमय हो जाता है।" तब यह गोलोक क्या हुआ, किसी राजा या नवाब का अन्तःपुर हो गया और कृष्ण परमात्मा क्या हुये, उनकी स्थिति तो बहुपत्नियों से पीड़ित एक लम्पट व कामी राजा की सी हो गई। तिवारी जी का कथन कितना मार्मिक है—"गोलोकस्थ परमात्मा श्री कृष्ण की लम्पटता का इतना निश्शङ्क वर्णन पढ़कर मेरी तो बुद्धि चकरा जाती है। सोलहवीं सदी के नवाब और राजा महाराजा जिस तरह लम्पटता करते थे और उनके रणवासों में जैसा जीवन रानियों को बिताना पड़ता था, उसी को आदर्श मानकर इस पुराण के लेखक ने जगत्पिता श्रीकृष्ण के गोलोक की जीवनचर्या में व्यक्त करने की इच्छा की है।"

चीरहरण प्रसङ्ग

पुराणोक्त कृष्ण चरित में गोपियों के वस्त्रहरण का प्रसङ्ग भी कम आपत्तिजनक नहीं है। ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्द्ध के २७ अध्याय में यह प्रसङ्ग विस्तार से वर्णित है। कथा प्रसिद्ध है। अतः उसे लिखने की आवश्यकता नहीं। उसकी अश्लीलता भी अप्रकट नहीं है। गोपियों के नग्न होकर यमुना स्थान करने पर कृष्ण आपत्ति करते हैं—

'व्रते तु नग्नाया स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयं ।। ६७ ।।

व्रत में जो नग्न होकर स्नान करती हैं, जल के देवता वरुण उनसे रुष्ट हो जाते हैं। राधा के आग्रह पर गोपियां जल से बाहर आईं—

प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ।। ८३ ।।

इस पर कृष्ण ने उनसे जो कुछ कहा, वह उनकी लम्पटता का परम परिचायक है —

'करोतु शीघ्रं वस्त्राणां प्रार्थ्नां कृत्वा पुरांजलि ।। ९२ ।।

अञ्जलि बांध कर मुझ से वस्त्रों की प्रार्थना करो। पाठक समझ सकते हैं कि यदि वे अञ्जलि बांध लेंगी तो उनकी लज्जा का निवारण किस प्रकार होगा। इस लज्जा जनक प्रसङ्ग को यही समाप्त किया जाना उचित है। कृष्ण चरित विषयक अन्यान्य लीलायें भी भागवत के सदृश ही हैं। जिनकी विस्तृत आलोचना सत्य प्रकाशन से प्रकाशित शुद्ध कृष्णायन था लेखक रचित 'श्रीकृष्ण चरित'[1] में की गई है। कृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्द्ध के अन्तिम ५४ वें अध्याय में कृष्ण की १६००० पत्नियों का वर्णन भी अन्य पुराणों के समान है--

निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च ।

पत्नी षोडश साहस्रं विहारें च चकारस ।। १६ ।।

भयङ्कर युद्ध में नरकासुर को मारकर उसकी १६००० रानियों

---

१. आर्यसाहित्य मण्डल, अजमेर से प्रकाशित।

अध्याय के २३ वें श्लोक में कृष्ण की आयु १२५ वर्ष की बताई गई है।[1]

कुब्जा प्रसङ्ग

कृष्ण जन्म खण्ड उत्तरार्द्ध में कुब्जा प्रसङ्ग एक बार हमें कृष्ण राधा प्रसङ्ग की याद दिला देता है। कृष्ण की दृष्टि पड़ने मात्र से ही कुब्जा शोभा युक्त हो गई, लक्ष्मी के तुल्य रूप और यौवन सम्पन्न बन गई। मानों १२ वर्ष की कन्या हो—

श्रीकृष्ण दृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा बभूव ह।
सहसा श्रीसमा रम्या रूपेण यौवनेन च॥ २१॥
यथा द्वादशवर्षी या कन्या धन्या मनोहरा॥ २२॥

बाल विवाह के प्रेमी पौराणिक १२ वर्ष की कन्या में ही यौवन का आरोप कर लेते हैं। इसी कुब्जा से कृष्ण ने जो सम्भोग किया वह भी ब्रह्मवैवर्त के कलङ्कित प्रसङ्गों में से एक है। माधवाचार्य, दीनानाथ शास्त्री जैसे पौराणिक जो इन प्रसङ्गों में कुछ भी अनौचित्य नहीं, देखते उन्हें निम्न पंक्तियों को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये—

गत्वा ददर्श कुब्जां तां रत्नतल्पे च निद्रिताम्।
दासीगणैः परिवृतां सुन्दरी कमलामिव॥ ७२। ५५॥
बोधयामास तां कृष्णो न दासीश्चापि निद्रिताः॥ ७२।५५।

कुब्जा के घर जाने पर कृष्ण ने दासियों से घिरी हुई कुब्जा को रत्न शय्या पर सोते देखा। उन्होंने कुब्जा को ही जगाया, दासियों को नहीं। यदि कृष्ण का हृदय शुद्ध होता तो वे कुब्जा को जगाने की अपेक्षा उसकी दासियों को ही जगाते और उनके द्वारा ही गृहस्वामिनी (कुब्जा) से बात करते, परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर वे आये थे वह तो दासियों के सजग रहते सिद्ध नहीं हो सकता था। अतः कुब्जा को ही संभोगार्थ प्रबोधित करना उन्हें इष्ट था। यहाँ ब्रह्मवैवर्तकार

१. पंचविंशति वर्षं च वर्षाधिकं मुने॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथु विक्रमः॥

ने एक और नई बात लिखी है। उसके मतानुसार यह कुब्जा ही त्रेतायुग का शूर्पणखा थी—

त्यज निद्रां महाभागे शृङ्गारं देहि सुन्दरि।
पुरा शूर्पणखा त्वं च भगिनी रावणस्य च ॥ ७२ । ५६ ॥

यह लिखकर तो पुराणकार ने राम के चरित्र को भी कलङ्कित करने का दुस्साहस किया है। इसका अभिप्राय यह निकला कि राम ने चाहे सूर्पणखा को पत्नी के रूप स्वीकार न किया हो, परन्तु उन्हीं राम ने कृष्ण के रूप में उसे अपना पत्नी बना लिया। कुब्जा संभोग वर्णन भा वैसा ही स्थूल और ग्राम्य हुआ है जो कि इस पुराण की अपनी विशिष्ट वर्णन शैली है—यहाँ भी 'नग्नां चकार शृङ्गारं चुम्बनं चापि कामुकोम् ॥ ५९ ॥ कुब्जा को नग्न कर उसका चुम्बन किया।

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ।
नानाप्रकार सुरतं बभूव तत्र नारद ॥ ६१ ॥

दोनों हो रति पण्डित हैं इसलिये रति से विरति ही नहीं हो रही है। नाना प्रकार का संभोग हुआ। नखों और दाँतों का प्रयोग तो अवश्यम्भावी ही था, क्योंकि उसके बिना तो वात्स्यायन शास्त्र का झलक आ ही कैसे सकती है—

स्तन श्रोणियुगं तस्या विक्षतं च चकारह।
भगवान्नखरंस्तीक्ष्णैर्दशनैरधर वरम् ॥ ६२ ॥

रात्रि के अन्तिम समय में कृष्ण ने वीर्याधान कर इस पुनीत कृत्य (?) को समाप्त किया और सनातन-धर्म (पौराणिकमत) की जय बोली—

निशावसान समये वीर्याधानं चकार स ॥ ६२ ॥

माधवाचार्य जैसे अबोध पण्डितों का तो कुब्जा प्रसङ्ग में कुछ से कृष्ण ने विहार किया। कृष्ण चरित के सुधी समालोचक बङ्किम चन्द्र ने इस कथा को 'नानी की कहानी' को संज्ञा दी है। इसी

भी आपत्ति नजर नहीं आती। बात वही है—नैष: स्थाणोरपराधं यद्अन्धं न पश्यति। वृक्ष का अपराध नहीं यदि अन्धा उसे नहीं देखे।

कृष्ण चरित सम्बन्धी छ और—

पुराणोक्त कृष्ण-चरित की आलोचना के प्रसङ्ग में कुछ फुटकर बाते भी कही जा सकती हैं। अपने पिता नन्द से स्वयं कृष्ण राधा के प्रति किये गये संभोग की चर्चा करते हुए कहते है—

शृङ्गारान्ते च तस्यां च वीर्याधानम् मया कृतम् ॥ उ० ८४। ८६॥

संभोग के अन्त में मैंने राधा में वीर्याधान कर दिया। सम्भवत: इस घोर विलास प्रधान युग में भी कोई पुत्र अपने पिता से इतनी निर्लज्जता पूर्वक अपने सम्भोग की बात नहीं कह सकता, जिस प्रकार कृष्ण ने नन्द से उक्त बात कही। यही पौराणिक शिष्टाचार का नमूना है। इसमें बेचारे कृष्ण का क्या दोष ? पुराणकार ने उन्हें इसी प्रकार घोर कामी विलासी, परस्त्री-दूषक के रूप में चित्रित किया है। १०९ वें अध्याय में तो यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कृष्ण का जैसा प्रेम परकीया नायिका राधा से है वैसा स्वकीया पत्नी रुक्मणी से भी नहीं है—

राधायां यादृशी प्रीति रुक्मिण्यां नैव तादृश ॥ १०९। १९॥

वैष्णव-धर्म के ब्रह्मवैवर्त प्रचारित इस परकीया भाव ने ही हमारे समाज को रसातल तक पहुँचा दिया है, इससे कौन असहमत होगा ?

इस पुराणकार ने कृष्ण के सम्बन्ध में अनेक निन्दात्मक वाक्य भी लिखे हैं यद्यपि उन्हें कहलाया ऐसे लोगों से ही है जो कृष्ण के शत्रु या विरोधी हैं। फिर भी हम उन्हें क्षम्य नही समझते क्योंकि कृष्ण के चरित्र को दूषित करने में ऐसे वाक्य ही प्रधान कारण बने हैं। उदाहरणत: रुक्मि कहता है—

साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने ॥ १०५। ५१॥

गोपियों का साक्षात् जार झूठा खाने वाला कृष्ण क्या रुक्मिणी

म
ह
ब्रह
में

को स्वीकार कर सकता है ? संभोग से कुब्जा को मार डालने का आरोप भी रुक्मि लगाता है—

कुब्जा मृता संभोगाद्वासेसा रजकोमृतः ।। १०६ । २२ ।।

संभोग काल में कुब्जा को मार डालने के आरोप में कुछ सत्यता अवश्य प्रतीत होती है (पुराणों के अनुसार हमारे अनुसार नहीं) तभी तो बाणासुर भी कृष्ण पर यही आरोप लगाते हैं—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परम लम्पटः ।। अ० ११५ । ६१ ।।

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ।। ६२ ।।

यहीं तक नहीं वाणासुर तो कृष्ण पर अपने ही पुत्र नरक को मारकर उसकी स्त्री समूह से विवाह करने का भी आरोप लगाता है-

दुर्बलं नरकं हत्वा स्त्रीसमूहम् मनोहरम् ।
जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमनिष्ठुरः ।। १०५ । ६२ ।।

नरक विष्णु का पृथ्वी में उत्पन्न पुत्र होने के कारण कृष्ण के लिये भी वह पुत्र ही था। उस पुत्र की स्त्रियों से गमन कन्या गमन के तुल्य ही पातक हुआ, अतः बाण ने कृष्ण को 'योनिलुब्ध' कहा है। बाण तो महाभारत के युद्ध का दायित्व भी कृष्ण पर ही डालता है—

कुरुपाण्डवयुद्धं च कारयित्वा च दारुणम् ।। ११५।६२ ।।

यद्यपि इसमें तनिक भी सत्यता नहीं है। 'सर्वे चांशकलाः पुन्सः कृष्णास्तु भगवान् स्वयं' की घोषणा करने वाले पुराण ने कृष्ण के ही चरित्र को कितना विकृत, कलुषित, पापपूर्ण और मर्यादा के विरुद्ध चित्रित किया है, यह उपर्युक्त विवेचन से भलीभांति सिद्ध है।

ब्रह्मवैवर्त में ऋषि निन्दा—

पुराणों में देवताओं और ऋषिमुनियों की निन्दा की है, यह मत स्वामी दयानन्द ने प्रकट किया था। उपर्युक्त कथन की सिद्धि हमारे इस पुराणालोचन से भली प्रकार हो जाती है। ब्रह्मवैवर्त में ब्रह्मादि देवताओं और कृष्णादि महापुरुषों का चरित्रांकन जिस रूप में किया गया है उसकी झलक पाठकों को उपर्युक्त विवेचन से मिल

गई होगी। ऋषियों का चरित्र भी इस पुराण में अत्यन्त भ्रष्ट और आपत्तिजनक चित्रित किया गया है। महर्षि दुर्वासा जो पौराणिक साहित्य में अत्यन्त क्रोधी और उग्र स्वभाव के चित्रित किये गये हैं. इस पुराण में घोर कामी और वासनालोलुप के रूप में बताये गये हैं।

दुर्वासा ऋषि—

पुराणों में ऋषि मुनियों की निन्दा सर्वत्र है। दुर्वासा ने एक बार एक असुर को तिलोत्तमा नामक अप्सरा के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। उसे देखते ही उनके हृदय में सुरत इच्छा उत्पन्न हो गई पौराणिक ऋषि भी इस मामले में बड़ेही कच्चे साबित होते हैं। कोई भी अप्सरा उनके तप, त्याग ओर वैराग्य को क्षणमें विनष्ट कर सकती है। यही दुर्वासा जब तिलोत्तमा और असुर को रति क्रीड़ा में संलग्न देखते हैं, उस समय उनकी जो दशा होती है वह पुराणकार के द्वारा निम्न प्रकार वर्णित की गई है—

दृष्ट्वा तयोश्च शृंगार मुनि कामो बभूव ह।
जितेन्द्रियोऽउत्संगाद्दोषः सांसर्गिको भवेत्।।
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरतेस्पृह।। कृष्ण ज. २४।२।३

अर्थात् उनके शृंगार को देखकर मुनि कामी बन गये। जितेन्द्रिय मुनि भी कुसंग में पड़ कर दोष युक्त हो गये। उनके हृदय में सुरत की इच्छा उत्पन्न हो गई।

जमदग्नि ऋषि—

यह है दुर्वासा ऋषि का पुराणकथित चरित्र। अब जमदग्नि की दुर्दशा देखिये। कृष्ण जन्मखण्ड के ७९ वें अध्याय में यह कथा आती है। एक बार जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका के साथ नर्मदा तट पर गये और वहाँ पर एकान्त स्थल देख कर दिन में ही अपनी पत्नी से संभोग में प्रवृत्त हो गये। उस समय भगवान सूर्यने उन्हें इस प्रकार दिवा मैथुन में रत देख कर उनकी भर्त्सना की। सूर्य ने कहा आप वेदकर्त्ता ब्रह्मा के प्रपौत्र, स्वयं चारों वेदों के ज्ञाता, वेदांगकर्त्ता, [redacted] हैं फिर—

धर्मं त्यजति धर्मज्ञो ह्यधर्मेण रत: कथम् ।
दिवामैथुन दोषं च वक्ति वेदो विशेषत: ।।७६।१८

हे धर्मज्ञ, आप धर्म छोड कर अधर्म में क्यों रत हो रहे हैं ? वेदों ने दिन में मैथुन करना विशेष रूप से दोष माना है । गनीमत यह हुई कि सूर्य की इस गर्हणा से लज्जित होकर—

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा तत्याज, मैथुनं द्विज: ।। १६

जमदग्नि ने मैथुन त्याग दिया, परन्तु मैथुन कर्म से विरक्त भले ही हो गये हों, उन्होंने अपने आपको दोषी नहीं माना और भागवत के शुकदेव की भाँति कहने लगे—

तेजीयसां न दोषाय बह्निः सर्वभुजो यथा ।। २३

अर्थात् जिस प्रकार सर्वभुज अग्नि को कोई दोष नहीं लगता उसी प्रकार तेजस्वी व्यक्तियों को अनुचित कर्म में प्रवृत्त होने पर भी दोष नहीं लगता । अर्थात् जमदग्नि की दृष्टि में तेजस्वी व्यक्तियों को दिवामैथुन से कोई दोष नहीं लगता जमदग्नि केवल इतना कहकर ही सन्तुष्ट नहीं हो गए । उन्होंने तो यहाँ तक कहा—

न वैष्णवानां शास्तारो, यूयमस्माकमेव च ।
न वासुदेव भक्तानाम शुभं, विद्यते क्वचित् ।। २५

अर्थात् वैष्णवों को उपदेश देने का अधिकार तुम्हें नहीं है । वासुदेव भक्तों का अशुभ कभी नहीं होता । यह कहकर तो मानो जमदग्नि ने यह स्पष्ट कर दिया कि वैष्णव लोग यदि घोर से घोर कृत्य भी करें तो उन्हें समझाने का अधिकार भी किसी को नहीं है । हमारे प्यारे वैष्णव बन्धुओ ! क्या जमदग्नि का अनुकरण करते हुए आप भी दिवामैथुन में आसक्त होने को उचित मानेंगे ? जमदग्नि को अपने वैष्णव होनेका बड़ा अभिमान था । उसी अहङ्कार के वश होकर वे कहते हैं—विष्णु का सुदर्शन चक्र वैष्णवों की सदा रक्षा करता है—

हरे: सुदर्शन चक्रं शश्वद्रक्षति वैष्णवान् ।।

उचित तो यह था कि जमदग्नि सूर्य के परामर्श से अपने को उपकृत हुआ अनुभव करते और अपने दुष्कर्म के प्रति लज्जा का अनुभव करते, परन्तु वे तो 'रस भंग' हो जाने से खिन्न थे और उसी

आवेश में चट सूर्य को उन्होंने यह शाप भी दे डाला—

मम शापात्पापदृश्यो, राहु ग्रस्तो भविष्यसि ।।

मेरे शाप से तू राहुग्रस्त हो जायगा। पुराणकार की सम्मति में जमदग्नि के शाप से ही सूर्यग्रहण होता है। इस प्रकार के शतशः दृष्टान्त पुराणों में से दिये जा सकते हैं जिन में इन ग्रन्थों के रचियिताओं का ऋषि मुनियों को कलंकित करने का ध्येय स्पष्ट प्रकट होता है ।

साम्प्रदायिक विभेद—

पुराणों की रचना शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वैष्णव आदि विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा अपने २ आराध्य देव को सर्वोत्कृष्ट सिद्ध करने की दृष्टि से की गई है। इस दृष्टि से वैष्णव पुराण विष्णु को ही सृष्टि का कर्त्ताहर्त्ता बताते हैं, शैवपुराण शिव को। कहीं कहीं विष्णु और शिव की एकता भी बताई गई है, यद्यपि अन्यत्र पुराणों में इस के प्रतिकूल भाव भी मिलते हैं। ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्म खण्ड में शिव निन्दा का खण्डन करते हुए स्वयं विष्णु से शिव के प्रति कहलाया गया है—

ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः।६।३१

पच्यन्ते ते कालसूत्रे यावच्चन्द्र दिवाकरौ ।।६।३१

जो पापी, ज्ञानहीन और अबोध तुम्हारी निंदा करते हैं वे अनन्तकाल पर्यन्त कालसूत्र नरक में पड़ते हैं। यह सत्य है कि उपर्युक्त कथन में शिव के प्रति आदर भाव व्यक्त किया गया है, परन्तु अन्यत्र भागवतादि पुराणों में शिव निन्दा भी कम नहीं आई है। सभी पुराणों को एक ही व्यक्ति की रचना बताने वाले व्यक्ति इस विरोध की संगति कैसे लगायेंगे ? कुछ भी हो ब्रह्मवैवर्त पुराण में शिव निंदा का स्वर कहीं भी लक्षित नहीं होता। इसके विपरीत शिव और विष्णु ऐक्यता का भाव यत्र तत्र लक्षित होता है। कृष्ण जन्मखण्ड अध्याय ७५ में कृष्ण नन्द से कहते हैं—

शिव पूजा विहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । ८५

शिव पूजा विहीन ब्राह्मण नरक को जाता है। ९१ वें श्लोक में तो कृष्ण स्पष्ट कह देते हैं—

'नास्ति मे शङ्करात्प्रियः'

शङ्कर से अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं है। कहना पड़ेगा कि वैष्णव पुराणों में अन्य सम्प्रदायों के प्रति जितनी उदारता के भाव व्यक्त हुए हैं उतने शैव पुराणों में नहीं। तभी तो शैव, शाक्त आदि पुराणो को 'तामस' कहा गया है। शिव पुराण की ही भाँति इस पुराण में भी लिंगार्चन की महिमा वर्णित हुई है। ब्रह्मखण्ड अध्याय ६ में विष्णु कहते हैं—

ज्ञानवान्मुक्तिमान्साधुः, शिवलिंगार्चनाद्भवेत।
शिवलिंगार्चन स्थानम, तीर्थ मेवतत्॥ ६। ४६॥

शिवलिंग का अर्चन करने वाला ज्ञानी हो जाता है, उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वह साधु बन जाता है। शिव लिंगार्चन का स्थान अतीर्थ होने पर भी तीर्थ का महत्व प्राप्त कर लेता है। गनीमत यह रही कि इस पुराण में शिव पुराणोक्त दारुवन की कथा की भाँति लिंगोत्पत्ति का इतिहास नहीं लिखा।

पुराणों की साम्प्रदायिक प्रवृत्ति स्वयं पुराण धर्मावलम्बियों को भी अस्वीकृत नहीं है। वे भी यह मानते हैं कि इन ग्रन्थों में विभिन्न देवताओं का माहात्म्य वर्णित है और जिस पुराण में जिस देवता को सर्वोच्च माना है उसमें अन्यों के महत्व को अस्वीकार करते हुए उन्हें तत् देवता का सेवक, किंकर और भक्त बताया गया है। इसके प्रमाण सर्वत्र मिलते हैं परन्तु इतना कह देने मात्र से ही पुराणों पर लगने वाले आक्षेपों का समाधान नहीं हो जाता। ब्रह्मवैवर्त में जैसा कि हम पूर्व ही लिख चुके हैं कृष्ण की महत्ता वर्णित है। उसे ही परात्पर, चिन्मय तत्व माना गया है अतः अन्य सभी देवी देवता कृष्ण के ही अनुगामी और सेवक बताये गये हैं। एक उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा। यह सभी जानते हैं कि मारकण्डेय पुराण के अन्तर्गत जो 'दुर्गा सप्तशती' का प्रकरण आता है, उसमें आदि शक्ति

जिसे दुर्गा आदि नामों से सम्बोधित किया गया है, का माहात्म्य वर्णित है। यही दुर्गा सप्तशती की सम्पूर्ण कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृतिखण्ड में वर्णित हुई है। परन्तु इस पुराण में कथा को थोड़ा परिवर्तित कर दिया। गया है। ब्रह्मवैवर्त की प्रकृति के अनुकूल यहाँ स्वयं दुर्गा ही समाधिवैश्य को कृष्ण की भक्ति करने का उपदेश देती है। देखो उक्त खण्ड का ६३ वां अध्याय। मारकण्डेय पुराणोक्त सप्तशती में जहाँ दुर्गा का ही महत्व वर्णित है वहाँ ब्रह्मवैवर्त का यह दुर्गोपाख्यान भी कृष्ण के ही गुणगान करता है। साम्प्रदायिक आग्रह के कारण ही यह सब तमाशे पुराणों में दिखाई पड़ते हैं।

जीव हत्या का समर्थन

जब दुर्गोपाख्यान की बात चल ही पड़ी तो लगे हाथ कुछ अन्य बातें भी लिखना आवश्यक है। ब्रह्मवैवर्तपुराण वैष्णव पुराण है, परन्तु शाक्तमत के अन्तर्गत जो मद्यमांस आदि का प्रयोग देवी की पूजा अर्चा के लिए होता है उसका खुलकर विरोध करने की शक्ति इस पुराण के लेखक में नहीं। तभी तो पूजा के त्रिविध रूपों को कल्पना करता हुआ पुराणकार लिखता है—

जीव हत्या विहीना या वरा पूजा तु वैष्णवी ।। प्र० ६४। ४६।।

जीव-हत्या रहित पूजा वैष्णवी पूजा है जो सर्वश्रेष्ठ है। द्वितीय स्थान माहेश्वरी पूजा का है जो बलिदान युक्त होने से राजसी है—

माहेश्वरी राजसी च बलिदान समन्विता ।। ६४। ४७ ।।

किरातादि असभ्य जातियों के पूजाचार को 'तामस' संज्ञा प्रदान की गई है। इसी अध्याय में देवी के प्रीत्यर्थ किये जाने वाले बलिदानों का भी उल्लेख हुआ है। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस वैष्णव पुराण में भी जीवहिंसा युक्त बलिदानों का विधान किया गया है।

बलिदान विधानम् च श्रूयतां मुनिसत्तम।
मायाति महिषं भागं दद्यान्मेषादिकं शुभम् ।। ६४। ६२ ।।

हे मुनि श्रेष्ठ! बलिदानों का विधान सुनें। जिन २ पशुओं को

देवी के लिये बलि चढ़ाया जाता है उसमें मनुष्य की गणना सर्वप्रथम की गई है और कहा गया हैं कि नर बलि से दुर्गा हजार वर्षों तक प्रसन्न रहती है, भैंसे की बलि से सौ वर्ष तक तथा बकरे की बलि से १० वर्ष तक—

सहस्र वर्षं सुप्रीता दुर्गामायाति दानतः ।
महिषाच्छातवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात् ॥ ७४ । ६३ ॥

यह बलि विधान भी विचित्र है, जैसी सेवा करो वैसी मेवा पाओ। यदि मनुष्य की बलि चढ़ाओ तो हजार वर्षों तक देवी को प्रसन्न कर पाओगे, परन्तु खेद है कि आज के युग में नर बलि को कानूनी दृष्टि से अपराध माना गया है और नर बलिदान करने वाला नर हत्या का का अपराधी माना जाकर दण्ड पाता है। आज के शाक्त तो मूक पशुओं को मारकर ही देवी को तुष्ट करते हैं। यह बलि प्रकरण किसी तंत्र ग्रन्थ या अन्य किसी शाक्त मत की पुस्तक में होता तो हमारे लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, परन्तु यह घोर आश्चर्य का विषय है कि ब्रह्मवैवर्त जैसा वैष्णव पुराण भी इस प्राणि हत्या के विधान में किसी वाममार्ग के ग्रन्थ से पीछे नहीं है। जिस व्यक्ति की देवी के सम्मुख बलि चढ़ाई जाए उसके लक्षण भी इस पुराण में बताये गये हैं। इसी अध्याय के अन्त में कहा गया है—

मायातीनां स्वरूपं च श्रूयतां मुनिसत्तम ।
वक्ष्याम्यथर्व वेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे ॥ १०० ॥

बलि के उपयुक्त व्यक्ति का स्वरूप अथर्ववेद के अनुसार कहता हूँ। इसमें व्यतिक्रम हो जाने पर बलिदान का फल नहीं मिलता। प्रथम तो पुराणकार का दुस्साहस देखिये जो नरबलि का विधान अथर्ववेद में ढूँढ़ता है। इसके अनुसार तो वह जो कुछ ऊल जलूल लिख रहा है वह सब किसी न किसी वेद में कहा ही गया है। अन्तिम रूप से तो पुराणों की वाही तबाही का भी दायित्व इन पौराणिकों के अनुसार तो वेदों पर ही है। तभी तो माधवाचार्य जैसे पौराणिक पण्डितों के समक्ष जब पुराणों की किसी आपत्तिजनक कथा

या प्रसङ्ग को समाधानार्थ प्रस्तुत किया जाता है तो उसका कोई समुचित उत्तर देने की अपेक्षा वे उसे येन केन प्रकारेण वेदोक्त सिद्ध करने के लिए एड़ी से चोटी तक का पसीना बहाने लगते हैं। अस्तु। प्रकृत में नरबलि की बात चल रही थी। आगे लिखा है—

पितृमातृ विहीने च युवकं व्याधि वर्जितम्।
विवाहितं दीक्षितं च परदार विहीनकम् ॥ १०१ ॥
अजारजं विशुद्धम् च सच्छाद्र परियोषितम्।
तद्‌बंधुभ्यो धनम् दत्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः ॥१०२॥

वह पुरुष जिसकी देवी के समक्ष बलि चढ़ाई जाय माता-पिता से रहित हो, युवक हो तथा व्याधि रहित हो। उसका विवाहित और दीक्षित होना भी आवश्यक है। वह व्यभिचार से उत्पन्न न हो, किसी सच्छूद्र से पोषित हो। उसके बन्धुओं को धन देकर उसे बलिदान के लिए खरीद लिया जाय। यदि यह बात माधवाचार्य जैसों के समक्ष रखी जाए तो वे तुरन्त ऐतरेय ब्राह्मण के उस प्रकरण की ओर संकेत करेंगे जिसमें अजीगर्त ब्राह्मण के पुत्र शुनःशेप को वरुण के समक्ष बलि देने के लिए राजा हरिश्चन्द्र द्वारा खरीद लिया था, चाहे ऐतरेय की इस कथा का वास्तविक तात्पय कुछ और ही क्यों न हो। अस्तु आगे देखिए—

स्नापयित्वा च तं कर्तापूजयेद्वस्त्र चन्द नैः।
माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरदंधि गोरोचनादिभिः। १०२

उस नर पशु को बलिदान कर्त्ता स्नान कराये, तदन्तर वस्त्र और चन्दनमाला, धूप, सिन्दूर, दही और गोरोचन से उसकी पूजा करे।

पुनः तं च बर्षं भ्रामयित्वा भृत्यद्वारेण यत्नतः।
वर्षान्ते च समुत्सृज्य दुर्गायै त निवेदयेत् ॥ १०४ ॥

अपने नौकरों द्वारा उसे १ वर्ष तक भ्रमण कराये और वर्ष के समाप्त होने पर उसे मार कर दुर्गा के लिये निवेदन करदे। यह है ... जो वैष्णव पुराण में भी उपस्थित है।

ब्रह्मवैवर्त में यज्ञ निन्दा

हम पूर्व ही यह कह चुके हैं कि पौराणिक धर्म की यह एक सामान्य प्रवृत्ति रही है कि वैदिक यज्ञयागों की निन्दा की जाए और उनके स्थान पर मूर्तिपूजा, अवतार, तीर्थ, स्तोत्र, आदि के महत्व को प्रतिष्ठित किया जाए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अब धर्म संचय का मार्ग सुगम बन गया या बना दिया गया है। अश्वमेध, वाजपेय, राजसूय जैसे वैदिक यज्ञ पौराणिक क्रिया कांडों की तुलना में नगण्य हो गये। वैदिक परम्पराओं को नष्ट करने और उनके महत्व की अवगणना करने का यह पूर्व नियोजित प्रयास था जिस में पौराणिक मत के पुरस्कर्ताओं को अभूतपूर्व सफलता मिली!

यज्ञों का स्थान नाम-स्मरण, तीर्थ यात्रा, प्रति मार्चन आदि ने ले लिया। वैदिक यज्ञों को अवगणना निम्न प्रमाणों से सिद्ध होती है! प्रकृति खण्ड के ८ वें अध्याय में एक विष्णुकृत पृथ्वी स्तोत्र आता है। उसका महात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—

पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पठनान्मुने।
अश्वमेध सतं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥ ६५

इस पृथ्वी स्तोत्र का पढ़ने वाला व्यक्ति पापोंसे मुक्त हो जाता हे, और सौ अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं। दूसरे उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकृति खण्ड के १० वें अध्याय में एक विष्णुपदी (गङ्गा स्तोत्र) है जिसके विषय में कहा गया है—

नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरी।
अश्वमेध फलं नित्यं लभते नात्र संशयः॥ १३६

इस स्तोत्र को जो व्यक्ति गङ्गा की पूजा कर नित्य भक्तिपूवक पढ़ताहै, उसे अश्वमेध का फल मिलता है इसमें कुछ भी संशय नहीं।

इसी पुराण के महागणपति खण्ड को जो समाहित चित्त होकर सुनता है वह राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। यह उक्त गण-

पति खण्ड के अन्तिम ४६ वें अध्याय में फलश्रुति के रूप में कहा गया है—

इदं गणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः।
स राजसूय यज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम्॥ ४१

अब राजसूय यज्ञ करना ही व्यर्थ हो गया। जब पुराण का एक अंश सुनना ही पर्याप्त है तो राजसूय यज्ञ का श्रम कौन करे। जन्माष्टमी व्रत निरूपण के प्रसङ्ग में लिखा गया है—

जन्माष्टम्यांच शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः।
अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना। कृष्ण। ८।७५

जो व्यक्ति जन्माष्टमी के दिन उपवास करता है उसे अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है। इस प्रकार सर्वत्र ही यज्ञ योगों को पौराणिक कर्म-काण्ड से अवर सिद्ध किये जाने का कुचेष्टा इस पुराण में मिलती है। हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि कृष्ण जन्माष्टमी जैसे ऐतिहासिक पर्व न मनाये जायें। अवश्य ही रामनवी और कृष्ण जन्माष्टमी आर्य जाति के लिये अपूर्व प्रेरणदायक पुण्य पर्व है जबकि हम राम और कृष्ण जैसे आर्य मर्यादा के रक्षक, पालक और वर्द्धक महापुरुषों का गुणकीतन और चरित्र श्रवण करते हैं, परन्तु पुराणों में तो इन पुनीत पर्वों को मनाने की विधियां ही विचित्र दी हुई हैं। पूर्वोक्त ८ वें अध्याय में जन्माष्टमी मनाने की जो विधि बताई गई है सम्भवतया उसी के अनुकरण के रूप में वल्लभ सम्प्रदाय में इन पर्वों पर अत्यन्त स्थूल क्रिया कांड करने का प्रचलन हुआ। आज भी जन्माष्टमी के दिन वैष्णव मन्दिरों में एक स्त्री या पुरुष को देवकी बनाया जाता है, वह प्रसव पीड़ा का अभिनय करती है, तत् पश्चात् कृष्ण को जन्म देती है आदि २ सभी बातें अत्यन्त स्थूल रूप मे की जाती हैं। ब्रह्मवैवर्तमें इसके लिये स्पष्ट आधार मिल जाता है जहां कहा गया है—

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिका गृहम्। ८।८

स्नानादि नित्य क्रिया करके सूतिका गृह बनावें। फिर—

तत्र द्रव्यं बहुविधं नाभिच्छेदन कर्तनम्।

धात्री स्वरूपा नारी च यत्नतः स्थापयेद्बुधाः ।८।६

इस सूतिका गृह में नाभि-छेदन आदि के विविधि औजार रखे और दाई के रूप में एक नारी की स्थापना करे। कहने का तात्पर्य यह है कि जन्माष्टमी के दिन आप योगेश्वर कृष्ण की योगनिष्ठा, आध्यात्मिक भावना, उनकी अपूर्व राजनीति, सामाजिक भावना तथा उनके अन्यान्य सहस्रशः गुणों को याद करें यह कोई आवश्यक नहीं, परन्तु प्रसूति गृह का निर्माण कर मन्दिरों में कृष्ण जन्म का नाटक अवश्य होना चाहिये। पुराणकार की सम्मति में जन्माष्टमी पर्व की यही सार्थक ा है।

प्रिय पाठक वृन्द ! आप सोच सकते हैं कि पर्व की यही सार्थकता है। जिस देश और जाति के लोग अपने महापुरुषों के गुणों को भूलकर उनकी स्थूल उपासना में ही रत हो जाएँ, उस जाति को अधोगति और पतन को भला कौन रोक सकता है ?

मुक्ति का सस्ता सौदा

सत्य तो यह है कि पुराणों ने मुक्ति को एक सस्ता सौदा बना दिया है। अब न तो ऋते ज्ञानामुक्तिः' वाली बात है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और न यजुर्वेद में कहे गये इस वाक्य का ही कोई आदर है कि 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय' अर्थात् उस परमात्मा को जाने बिना मृत्यु के पार नही जाया जा सकता, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। बल्कि पुराणकारों ने तो ऐसे २ मार्ग मोक्ष प्राप्त करने के ढूँढ़ निकाले हैं जिनमें "हर्रे लगे न फिटकरी और रङ्ग चोखा आये" उदाहरणार्थ इसी पुराण का गङ्गोपाख्यान और गङ्गामहात्म्य देखिये। प्रकृतिखण्ड अध्याय १० में स्पष्ट लिखा है :—

गङ्गागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७१ ॥

सैकड़ों योजन दूर से ही जो व्यक्ति 'गङ्गा गङ्गा' पुकारता है

उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है। और यह गङ्गा भी कैसी है—

कोटि योजन विस्तीर्णा दैर्घ्यं लक्ष गुणा ततः ॥ १० । ११७

करोड़ योजन में जिसका विस्तार है और जो उससे लाख गुणा लम्बी है। वस्तुतः ऐसे वर्णनों को पढ़कर हमें स्वामी दयानन्द की वह उक्ति बरबस स्मरण हो आती है जिसमें उन्होंने कहा है कि पुराण-कर्ता भूगोल विद्या के तो शत्रु ही हैं।

परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण की विशेषता तो उसके संभोग वर्णनों में है। इस पुराण का कोई भी उपाख्यान या प्रकरण सुरत प्रसङ्ग के वर्णन किए बिना नहीं चल सकता। अतः गङ्गोपाख्यान में भी गङ्गा और कृष्ण के समागम का वर्णन उसी सरस शैली में किया गया है जिसका दर्शन हम पूर्व राधा के प्रकरण में देख चुके हैं। यहां भी रति-करी शय्या है। (१२।१६) और नवसङ्गम से होने वाली मूर्छा है (१२।२१) जिसे देखकर राधा को सपत्नी जन्य ईर्ष्या होती है। सच ही कभी-कभी शङ्का होने लगती है कि यह गोलोक है या मध्यकालीन सामन्तों का अन्तःपुर जिसकी स्त्रियाँ परस्पर सपत्नीद्वेष (सौतिया-डाह) की शिकार रहती हैं।

शालग्राम शिलार्चन—

इसी प्रसङ्ग में शालग्राम शिला के महत्व की आलोचना भी अनुपयुक्त न होगी। प्रकृति खण्ड अध्याय २१ में लिखा है—"यानि कानि च पापानि ब्रह्म हत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्राम शिलार्चनात् ॥ ७८ ॥

ब्रह्म हत्या इत्यादि जितने पाप हैं वे शालग्राम शिला की पूजा करने से दूर हो जाते हैं। और भी—

शालग्राम शिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्।
सर्व पापाद्विमुक्तो विष्णु लोकं स गच्छति ॥ ६१ ॥

मृत्यु काल में जिसे शालग्राम शिला का जल मिल जाए वह

अपने सारे पापों से छूटकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है। लीजिये, कितना सस्ता नुस्खा बता दिया, सारे जीवन पाप करते रहो और अन्त में शालग्राम का उच्छिष्ट जल पी जाओ, बेड़ा पार है।

और भी सस्ता नुस्खा

पापों के नष्ट करने के और भी सरल उपाय पुराणों ने वर्णित किये हैं। कृष्ण जन्मखण्ड अध्याय ७५ में कृष्णानन्द से कहते हैं—

एकादशा ये कुर्वन्ति कृष्ण जन्माष्टमी व्रतम्।
शत जन्म कृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

जो लोग एकादशी और जन्माष्टमी का व्रत करते हैं उनके सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

विप्र पूजा

मुक्ति के सस्ते उपायों में विप्र पूजा का भी स्थान है। पुराणों ने 'ब्रह्म वाक्यं जनार्दन' तक ही ब्राह्मणों के गौरव को सीमित न रख कर उनको साक्षात् भुक्ति-मुक्ति का दाता माना और उनकी चरण-सेवा को मोक्ष का सर्वोपरि उपाय माना। इस प्रकार के ब्राह्मण महत्व निर्देशक वाक्य भी पुराणों की साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को स्पष्ट कर देते हैं। प्रकृति खण्ड के ५४ वें अध्याय में लिखा है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥ १४१ ॥
विप्र पादोदकं चैव पाप व्याधि विनाशनम्।
सर्वतीर्थोदकं समं भुक्ति मुक्ति प्रदं शुभम् ॥ १३५ ॥
विप्रो मानव रूपी च देवदेवो जनार्दनः।
विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुञ्जते सर्व देवताः ॥ १३६ ॥

अर्थात् पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे सागर के तीर्थों के तुल्य हैं और सागर के समस्त तीर्थ विप्र के चरणोदक के तुल्य हैं। ब्राह्मण के चरणों का जल पाप और व्याधि को दूर करने वाला सब तीर्थों के जलों के तुल्य भोग और मोक्ष का देने वाला है। मनुष्य रूप में विप्र

ही विष्णु के तुल्य है। विप्र को दिया हुआ द्रव्य ही सब देवताओं को मिलता है। स्पष्ट है कि ये अंश उस समय लिखे गए थे जब ब्राह्मणों ने अपना सर्वोपरि प्रभुत्व जमाने का निश्चय किया और यह घोषणा की—

ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्।
विप्रभुक्तं च यद्द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येन देवताः॥ कृ० १२४।२३॥

हे राधा, ब्राह्मणों का मुख ही देवताओं का मुख्य मुख है। जो द्रव्य ब्राह्मण लोग खाते हैं वही देवताओं को पहुँचता है। वैदिककाल में देवताओं को हवि अग्नि के माध्यम से पहुँचाई जाती थी और अग्निहोत्र को ही देव पूजा का साधन माना जाता था, परन्तु पौराणिक काल में उसका स्थान विप्र पूजा ने ले लिया। यह ब्राह्मणों की (अति) श्रेष्ठता ही कालान्तर में अन्यान्य स्मृति ग्रन्थों और धर्म शास्त्रीय निबन्धों में विस्तार से वर्णित हुई जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में डॉ० अम्बेडकर जैसे व्यक्तियों को मनुस्मृति जैसे आर्ष ग्रन्थों पर कीचड़ उछालने का अवसर मिला।

पुराण वर्णित मिथ्या माहात्म्य

उपर्युक्त विवेचन में हमने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि पुराणों में सर्वत्र गङ्गा शालग्राम, विप्रपूजन आदि के महत्व को अतिशयोक्ति पूर्ण ढङ्ग से वर्णित किया गया है। यह मिथ्या माहात्म्य वर्णन की परिपाटी यहीं तक सीमित नहीं रही। कहीं २ तो यह माहात्म्यवर्णन सीमा का अतिक्रमण ही कर गया है, जो आज की दृष्टि से अत्यन्त उपहासास्पद माना जा सकता है। कृष्णजन्म खण्ड अध्याय १९ में कालियादमन का प्रसङ्ग वर्णित है। इसमें कालिय ने स्तोत्र से कृष्ण की स्तुति की है उसकी प्रशंसा में लिखा गया है—

नागराज कृतं स्तोत्रम् प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
वंशजानां च तस्यैव नागेभ्यो न भयं भवेत्॥ ६३॥

स नाग शय्यां कृत्वैव स्वप्तुं शक्तः सदा भुवि ।
विषपीयूषयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे ॥ ६४ ॥
नागग्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विष भोजने ।
स्तोत्र स्मरण मात्रेण स्वस्थो भवति मानवः ॥ ६५ ॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति ।
विषाग्नि वज्र भीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम् ॥ ६७ ॥

अर्थात् नागराज कृत इस स्तोत्र को जो व्यक्ति प्रातःकाल उठ कर पढ़ता है उसके वंश के लोगों को साँपों का कभी भय नहीं होता। वह नागों की शय्या बनाकर सदा पृथ्वी पर सो सकता है और विष या अमृत पी लेने पर भी उसे कुछ अन्तर नहीं ज्ञात होता। नागों से ग्रस्त होने पर नागों के काटे जाने पर तथा प्राणांत के समय तथा विष भक्षण कर लेने पर इस स्तोत्र का स्मरण कर लेने से ही मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। जिस घर में इस स्तोत्र का पाठ होता है वहाँ साँप नहीं रहते और न उस घर के लोगों को विष, अग्नि या वज्र का ही भय रहता है। अब हाथ कङ्गन को आरसी क्या ? शीघ्र ही पुराण धर्मावलम्बी सज्जनों को इस कथन की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि वे पुराण कथित बातों को अक्षरशः सत्य समझते हैं तो क्यों नहीं नागों की शय्या बनाकर शयन करते या विष पीकर भी जीवित रहते।

मिथ्या माहात्म्य वर्णनके और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। प्रत्येक देवी-देवताओं का स्तोत्र पाठ अपुत्रों को पुत्र लाभ कराने वाला कीर्तिहीनों को कीर्ति प्राप्त कराने वाला होता है। कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ५६ में एक लक्ष्मी स्तोत्र है, उसका यही महत्व अध्याय के अन्त में वर्णित हुआ है। इसी प्रकार ५९ वें अध्याय में शची कृत गुरु स्तोत्र है जिसकी प्रशंसा में भी यही राग अलापा गया है—

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम् ।
रोगार्तो मुच्यते रोगात् आदि ॥

इसी खण्ड के ६९ वें अध्याय में ब्रह्माकृत कृष्ण स्तोत्र है जिसके

लिये कहा गया है। इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रम् यः शृणोति समाहितः। तत्सर्वाभीष्ट सिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥ २५ ॥

ब्रह्मकृत इस स्तोत्र को जो समाहित होकर सुनता है उसके सभी अभीष्टों को पूर्ति होती है इसमें कुछ भी संशय नहीं। फिर वही 'अपुत्रो लभते पुत्रम् प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम' का नारा बुलन्द किया गया है। इसी खण्ड के ७० वें अध्याय में अक्रूर कृत कृष्णस्तोत्र है जिसका माहात्म्य भी यह है। मानो माहात्म्य वर्णन की शब्दावली बनी बनाई, पूर्व से ही सुनियोजित है जिसे किसी प्रसङ्ग में फिर प्रयोग किया जा सकता है, वही 'अपुत्रो लभते पुत्रं' वाला प्रलाप यहाँ भी किया गया है। विशेषता इतनी हो है कि इसमें प्रजाहीन को प्रजा लाभ और अप्रतिष्ठित को प्रतिष्ठालाभ होना भी बताया है।

मोक्ष प्राप्ति के और भी आसान तरीके यहाँ बताए गए हैं। कृष्ण जन्मखण्ड के ७६ वें अध्याय में कृष्ण नन्द से कहते हैं—

कार्तिक्यां पूर्णिमा यां च राधिका प्रतिमां शुभाम्।
सं पूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २० ॥

कार्तिक की पूर्णिमा को जो राधा की शुभ मूर्ति की पूजा कर उसका दर्शन करता है और उसके आगे नमन करता है उसके जन्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं। प्यारे पाठकगण विचारिए जब जन्ममरण के शाश्वत चक्र से मुक्ति पाना पुराणकार ने इतना सुगम बना दिया फिर शास्त्रवर्णित ज्ञान, कर्म और उपासना का सहारा कौन लेना चाहेगा ?

कहीं-कहीं तो ये माहात्म्य कथन नितांत अनौचित्यपूर्ण बल्कि मूर्खतापूर्ण भी हो गए हैं। उदाहरण के लिए पुराणों के अध्येताओं से बृहस्पति पत्नी व तारा चन्द्र के रोमांस की कथा छिपी नहीं है। गुरु पत्नी से चन्द्र ने किस प्रकार व्यभिचार किया और तारा ने भी निलज्ज होकर अपने जार चन्द्रमा का पल्ला पकड़ा। यह सारी कथा विभिन्न पुराणों में वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ८१ में सम्पूर्ण कथा को लिखकर उसके माहात्म्य में कहा गया है—

एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानंपुण्यदं शुभम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत् ॥ ६४ ॥

हे नन्द, मैंने तुम से यह पुण्यदायी आख्यान कहा, इसे सुनकर मनुष्य निष्पाप और कलङ्क रहित हो जाता है । हमारा निवेदन यह है कि यदि व्यभिचार की कथाओं को सुनने से ही मनुष्य निष्पाप होता है तो सदाचारी और चरित्रवान महापुरुषों के चरित्र श्रवण का क्या महत्व रहा ?

अन्ध–विश्वास

पुराणों की रचना उस काल में हुई जिसे इतिहासकारों ने अन्धकार युग (Dark-age) कहा है जबकि अन्धविश्वासों, मिथ्या रूढ़ियों और मूर्खता पूर्ण धारणाओं ने समाज को आक्रांत कर लिया था । ब्रह्मवैवर्त में भी इस प्रकार के मिथ्या विश्वासों और अन्ध धारणाओं के अनेक नमूने मिलते हैं । दुःख तो इस बात का है कि आज के वैज्ञानिक और बुद्धिप्रधान युग में भी लोगों ने इन मिथ्या धारणाओं से मुक्ति नहीं पाई है । भारत में ही ऐसे लाखों व्यक्ति मिलेंगे जो शुभाशुभ शकुनों में विश्वास रखते हैं । साप्ताहिक भविष्य छापने वाले समाचार पत्रों का नियमित रूप से पारायण करते हैं और इनकी सत्यता में विश्वास भी रखते हैं । गणपति खण्ड अध्याय ३३ में शुभ शकुनों की एक सूची गिनाई गई है और ३४ वें अध्याय में अमङ्गलों का वर्णन आया है । कृष्ण जन्म खण्ड के ७६ वें अध्याय में कृष्ण नन्द के प्रति उन वस्तुओं का नामोल्लेख करते है जिनका दर्शन शुभ माना गया है । पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि दर्शनीय वस्तुओं में 'वेश्या' को भी गिनाया गया है । अब यह जिज्ञासा का विषय है कि कितने पौराणिक बन्धु पुराण की इस व्यासोक्त आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रातःकाल की पुनीतवेला में मङ्गला मुखी का मङ्गल दर्शन कर अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं । इसी खण्ड का ७७ वां अध्याय स्वप्नाध्याय है जिसमें सु-स्वप्नों का उल्लेख है जिनका देखना मङ्गल

कारक माना गया है। सम्भव है फ्रायड के मनोविज्ञान के अध्ययन में पुराणों का यह स्वप्न विज्ञान कुछ सहायक हो सके (!) ८२ वें अध्याय में अमङ्गलों और अपशकुनों का वर्णन है। यह सारे ही प्रकरण अन्ध-विश्वासो पर आधारित होने के कारण अविश्वसनीय और त्याज्य हैं। एक विचित्र बात इस अध्याय के ५५ वें श्लोक में लिखी है—

दृष्ट्वा च मरणं स्वप्ने शतायुश्च भवेन्नरः ॥

स्वप्न में अपनी मृत्यु देखने वाला मनुष्य शतायु हो जाता है। इस प्रकार के मूर्खता पूर्ण कथनों पर आज कौन विश्वास करेगा ?

ब्रह्मवैवर्त में वैष्णव साम्प्रदायिकता—

इस पुराण के साम्प्रदायिक स्वरूप की कुछ चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। इस पुराण की सम्मति में तो अवैष्णव द्विज की अपेक्षा वैष्णव चाण्डाल कहीं अधिक श्रेष्ठ है। वह वैष्णव चाण्डाल अपने परिवार सहित मुक्त हो जायेगा और अवैष्णव ब्राह्मण नरक जायेगा। ब्रह्म खण्ड के ११ वें अध्याय में यही बात कही गई है—

अवैष्णवाद् द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः।
सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ११।१९

इसका तो यह अर्थ निकला कि जितने वैष्णवेतर लोग हैं वे सभी नरकगामी होंगे। साम्प्रदायिक दृष्टि की सङ्कीर्णता का इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। नहुष ने तो वैष्णव होने के नाते ही इन्द्र पत्नी शची से बलात्कार करने की चेष्टा की थी। जब शची ने उसे परस्त्री-गमन की हानियाँ बताईं तो नहुष ने निर्लज्जता पूर्वक उत्तर दिया—

बन्हि सूर्य ब्राह्मणेभ्यन्तेजीयान्वैष्णवः सदा। ९६ कृ० ४। ५९
रक्षितो विष्णु चक्रेण स्वतन्त्रो मत्त कुञ्जरः ॥ ९७

वैष्णव तो अग्नि, सूर्य और ब्राह्मणों से भी अधिक तेजस्वी होता है। विष्णु के चक्र से रक्षित होकर वह स्वतन्त्र मतवाले हाथी की तरह घूमता रहता है। सम्भवतः ऐसे पुराण वाक्यों से बल पाकर ही

बल्लभ सम्प्रदाय तथा अन्यान्य वैष्णव सम्प्रदायों में परनारी-गमन के दोष को दोष ही नहीं माना गया है तथा वहाँ व्यभिचार की खुली छूट दे दी गई है। जब सुदर्शन चक्र से रक्षित होकर अन्य वैष्णव नहुष की भाँति स्वेच्छापूर्वक मदमत्त हाथी की तरह विचरेंगे तो शची जैसी अवलाओं का क्या हाल होगा ? क्या ऐसे ही वैष्णवों को इस पुराण में पवित्र कहा गया है ? श्रीकृष्ण जन्मखण्ड के ११ वें अध्याय में महादेव वैष्णव ब्राह्मण को पूज्यतम बताते हैं—'न हि पूत च पश्यामि वैष्णव ब्राह्मणात्परम् ।' परन्तु यदि वैष्णव लोग नहुष जैसे काण्ड करने लगें तो उससे वैष्णवता कलङ्कित ही होगी। हमारे कथन का अभिप्राय यही है कि ब्रह्मवैवर्तपुराण वैष्णव पक्षपात से परिपूर्ण है।

ब्रह्मवैवर्त बनाम कामशास्त्र

आलोच्य पुराण का अध्ययन करते समय एक बात सहज ही पाठक का ध्यान आकृष्ट कर लेती है। इस पुराण का कोई अध्याय ऐसा नहीं जिसमें स्थूल शृङ्गार और वासनोत्तेजक बातों का वर्णन न हो। कभी २ तो यह शङ्का होने लगती है, कहीं इसका लेखक कोई काम शास्त्र में निपुण व्यक्ति तो नहीं था। लेखक को शृङ्गार रस का वर्णन करने में कमाल हासिल है। उसने अश्लीलता, ग्राम्यत्व आदि दोषों का ध्यान किए बिना ही इस प्रचार के गर्हित और शिष्ट रुचि के प्रतिकूल रति वर्णनों से पृष्ठ के पृष्ठ काले कर डाले हैं। फिर भी आश्चर्य है कि बन्धु इन तथाकथित पुराणों को व्यास रचित मानते हैं और उन्हें स्त्रियों तथा शूद्रों के लिए उपयुक्त ठहराते हैं। हमारा तो यह स्पष्ट मत है कि कोई भी स्त्री यदि इस पुराण का अध्ययन करले तो उसकी प्रवृत्ति व्यभिचार की तरफ अवश्य हो जायेगी क्योंकि स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक आकर्षण का जितना गर्हित और नग्न वर्णन इस ग्रन्थ में है उतना तो शायद काम-शास्त्र के ग्रन्थों में भी न हुआ होगा। यद्यपि हम अपने मन्तव्य को विस्तार पूर्वक सोदाहरण सिद्ध कर सकते

हैं परन्तु ब्रह्मवैवर्त के इस प्रकार के सारे प्रसङ्गों का उल्लेख करना भी न तो सम्भव ही है और न औचित्यपूर्ण ही।

मैथुनवर्णन में इस पुराणकार की सहज रुचि है। वह कोई ऐसा स्थल नहीं छोड़ना चाहता जिसमें स्त्री-पुरुष की काम-क्रीड़ा का वर्णन न हो। ब्रह्मखण्ड के नवें अध्याय में विष्णु पृथ्वी के साथ, शङ्ख-चूड़ का तुलसी के साथ, दुर्वासा का कंकली के साथ, अनिरुद्ध का ऊषा के साथ, कृष्ण का राधा के साथ, कुवेर पुत्र नल कूबर का रमा के साथ, तिलोत्तमा के साथ बलिपुत्र साहसिक का संभोग वर्णन इतना अश्लील, नग्न और ग्राम्य है जिसे किसी प्रकार यहाँ दे सकना हमारे लिये शक्य नहीं हो रहा। कामशास्त्र के इतने विस्तार में तो शायद काम शास्त्र प्रणेता मुनि वात्स्यायन भी नहीं गये होंगे।

इस पुराण का मोहिनी उपाख्यान भी इसी कोटि का है। इसमें मोहिनी काम शास्त्र की दृष्टि से पुरुषों के तीन भेद करती है। उत्तम पुरुष वह है जो नारी का संकेत पाकर ही मत्त हो जाता है और उसे पकड़ कर संभोग करता है—

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तं भवेन्मनः।
करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो ॥ कृ० ३३। ३

मध्यम पुरुष वह है जो नारी के अभिप्राय को स्फुट जानकर तथा उससे बुलाया जाकर पश्चात् उसे भोगता है—

ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्या संप्रेषितो ह्रियः।
पश्चात् करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः ॥ ४

और अधम पुरुष, बल्कि उसे पुरुष न कहकर क्लीव ही कहना चाहिए जो बार-बार कामार्ता स्त्री के द्वारा बुलाये जाकर एकान्त में भी उसके साथ लिप्त नहीं होता—

पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्तया च यः।
तया न लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमान् हि ॥ ५

इस पुराणकार की सम्मति में तो जो गृहस्थ, तपस्वी या कामी

उपस्थित नारी को बिना भोगे छोड़ देता है वह इस लोक में अपूज्य होकर मरने पर नरक में जाता है—

गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत्स्त्रियमुपस्थिताम् ।
व्रजेत्परत्र नरकमपूज्यश्च भवेदिह ॥ ३३ । ६

आप आश्चर्य न करें। ये श्लोक किसी कोकशास्त्र की कोटि की पुस्तक के नहीं हैं, ये तो उस धर्मग्रन्थ के हैं जिसे हमारे पौराणिक बन्धु व्यासोक्त मानते हैं तथा जिसे पं० बलदेव उपाध्याय जैसे विद्वान् वेदार्थ ज्ञान के लिये आवश्यक बताते हैं।

जब मोहिनी की इन प्रलोभन युक्त बातों का 'वेदाभ्यासी जड़-मति' ब्रह्मा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तो उसने ब्रह्मा को शाप दिया कि वे अपूज्य होंगे और वर्ष में केवल एक बार ही उनकी पूजा होगी। मोहिनी के कथन से हमें एक कटु सत्य के दर्शन होते हैं जब कि ब्रह्मा द्वारा उपेक्षा पूर्ण दृष्टि से देखी जाकर वह कहती है—

इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थं समुपबृंहयेत् ।
स्वकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम्' ३३ । ३५

जो अपनी ही पुत्री की कामना करता है वह मुझ जैसी नर्तकी को देखकर कैसे हँस सकता है। बात तीखी अवश्य है, परन्तु पुराणोल्लिखित पूर्व वार्ताओं से इसकी पुष्टि हो जाती है।

व्यभिचार को प्रोत्साहन देने वाले ऐसे अनेकों उत्तेजनाप्रद वाक्य इस पुराण में विद्यमान हैं। स्वयं नारायण ही अपने श्रीमुख से फरमाते हैं—

यदि तद्भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ॥ ५२ ॥
स्वयं तृप्ति कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रिय ॥ ५३ ॥

यदि दैवयोग से कोई कामार्ता स्त्री एकान्त में उपस्थित हो जाये तो जितेन्द्रिय पुरुषों द्वारा वह छोड़ने योग्य नहीं है।

जब राधा को इस बात का ज्ञान हुआ कि ब्रह्मा ने कामार्ता मोहिनी को त्याग दिया है तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने भी विष्णु

के स्वर में स्वर मिलाकर अपने नवीन आचार शास्त्र (Ethics) का एक सूत्र प्रस्तुत किया—

उपस्थितायास्त्यागे च महान्दोषो हि योषितः ।। ३५ । २८ ।।

संभोग के लिये उपस्थित स्त्री का त्याग महान दोष है । इससे बढ़कर व्यभिचार की ओर शिक्षा क्या होगी और यह कथन भी उर्वशी, तिलोत्तमा, रम्भा जैसी किसी गणिका का न होकर उस राधा का है जो पौराणिक बन्धुओं के लिए कृष्ण प्रिया होने से माता के तुल्य है जो आद्या शक्ति है तथा जिसकी प्रत्येक आज्ञा उनके लिये अनुकरणीय है । (तब क्या······· ?)

वस्तुतः बात यह है कि देवताओं का रतिवर्णन कालिदास के समय में चाहे आपत्तिजनक माना जाता रहा हो (तभी तो यह उक्ति प्रसिद्ध है कि कुमार सम्भव में शङ्कर-पार्वती का मर्यादा अतिक्रमण कर जो संभोग वर्णन कालिदास ने किया उसी के फलस्वरूप उसे कुष्ठ रोग हो गया था) तथा साहित्य के आचार्यों ने देवता विषयक् रति को रसाभास माना हो परन्तु पुराणकार की सम्मति में तो यह रतिवर्णन पापों को नष्ट करने वाला है—

"तयो रहसि संभोगं पापिनां पापमोचनम्" कृ० ४०।५

शङ्कर पार्वती का एकान्त में संभोग पापों को दूर करता है। यह उक्ति भी किसी ऐसे वैसे की न होकर राधा की है, जो इस पुराण में सर्वाधिक स्थान रखती है।

जिस प्रकार मोहिनी ने यौनशास्त्र की दृष्टि से पुरुषों का त्रिविध वर्गीकरण किया था, उसी प्रकार कृष्ण नन्द के प्रति तीन प्रकार की स्त्रियों का कथन करते हैं। यह वर्गीकरण कोकशास्त्र में वर्णित पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रणी आदि के तुल्य ही है । अधमा नारी की अन्यान्य विशेषताएं बताते हुए कृष्ण अन्त में कहते हैं—

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्या युवानं रतिशङ्करम् ।
योनि क्लिद्यति नारीणां कामिनीनां निरन्तरम् ।। ८४।३५

इस श्लोक का तो भाषानुवाद करने में भी हम अक्षम हैं। पता नहीं कृष्ण ने अपने पिता से ऐसी अश्लील बात कैसे कही ?

क्या इन श्लोकों की उपस्थिति में भी किसी को यह भ्रम हो सकता है कि कृष्ण और राधा के यह वर्णन अध्यात्मनिष्ठ हैं और यह संभोग वर्णन मात्र आलङ्कारिक है ?

ब्रह्मवैवर्त में वैदिक सिद्धान्त निरूपण—

कहीं-कहीं इस पुराण में भी हमें वैदिक सिद्धांतों का यथार्थ निरूपण उपलब्ध होता है परन्तु वह वैसा ही है जैसा समुद्र में एक बूंद। बात यह है कि पुराण रचना काल में यद्यपि धर्म के लगभग सभी सिद्धांत और मानदण्ड बदल चुके थे, फिर भी यत्र-तत्र घोर घटा में विद्युच्छटा के तुल्य वैदिक मन्तव्य भी अपना क्षणिक प्रकाश दिखला ही जाते थे। उदाहरणार्थं ब्रह्मखण्ड के २० वें अध्याय में नियोग की वैदिक प्रथा का स्पष्ट संकेत मिलता है। कान्य कुब्ज देश में द्रुमिल नाम का एक शूद्र था, कलावती नाम की उसकी पत्नी थी जो स्वामी के दोष के कारण बंध्या रह गई—

'स्वामिदोषेण - सा 'बन्ध्या' २०। १३ स्पष्ट शब्दों में कहें तो इसका यह अर्थ हुआ कि द्रुमिल नपुंसक था। उसके पति ने ही (भर्तुराज्ञया) उसे काश्यप मुनि से नियोग कर सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी।

कर्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था

नियोग तो खैर आपद्धर्म ठहरा। उसे तो पुराणकार ने आपा-ततः स्वीकार किया ही है। इस पुराण में वर्ण व्यवस्था भी जन्म पर आधारित न होकर कर्म पर ही आधारित मानी गई है। प्रकृति खण्ड के सावित्री यम सम्वाद (अ० २४) में यम कहते हैं—

कर्मणा ब्राह्मणत्वं च मुक्तत्वं स्वकर्मणा।

कर्मणा क्षत्रियत्व च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा ॥ २१ ॥
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं च स्वकमणा ॥ २२ ॥

कर्म से ही ब्राह्मणत्व, क्षत्रित्व, वैश्यत्व और शूद्रत्व होता है। वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में यही वैदिक मन्तव्य है। इसी प्रसङ्ग में यम यह भी कहते हैं कि बिना भोग कर्म-फल क्षीण नहीं होते, शुभाशुभ कर्म तो किये जाने के पश्चात् भोगने ही पड़ते हैं—

माऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ २६ । ७०

इस यमोक्ति से पुराणों की इस धारणा का स्वयं ही खण्डन हो जाता है कि कर्मफल बिना भोगे भी गङ्गा २ बोलने या अन्य सस्ते उपायों से जिनकी आलोचना की जा चुकी है क्षीण हो जाते हैं।

वैदिक अभिवादन—नमस्ते !

जिस वैदिक अभिवादन नमस्ते के खण्डन में पं० दीनानाथ शास्त्री, सारस्वत ने 'सनातन धर्मालोक' का प्रथम भाग लिखा वह 'नमस्ते' तो इस पुराण में भी स्थान २ पर अभिवादन के रूप में प्रयुक्त हुआ है—यहाँ तक कि राधा को भी नमस्ते किया गया है—

कृष्णभक्ति प्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे। प्रकृति ॥ ५५।४५

गोपियाँ पार्वती की उपासना करती हुई कहती हैं—

देहि में वांछितम् देवि नमस्ते शङ्कर प्रिये ॥ कृ० २७ । ११

जब पुराणों के पात्र भी नमस्ते का अबाध प्रयोग करते हैं तो सारस्वत जी को उससे चिढ़ क्यों है ? क्या इसलिए कि इस युग में इसका प्रचार आर्यसमाज ने किया है ? पर हमारे मित्र श्री सारस्वत जी को यह ध्यान में रखना चाहिये कि 'आर्यसमाज' कोई नया मत मजहब नहीं है। बीच के अन्धकार युग में हम जिन वैदिक सनातन सचाइयों को भूल गये थे, आर्यसमाज उन्हीं को पुनः हमारे समक्ष रखता है। आज न सही कल इस भूली हुई वैदिक राह को सभी को अपनाना ही पड़ेगा। और कोई गति भी नहीं है। अतः अपने परम हितैषी आर्यसमाज को अपना विरोधी मानना भयङ्कर भूल है।

कुछ मनोहर सूक्तियाँ--

सैद्धान्तिक मतभेदों की चर्चा हमने विस्तार पूर्वक की, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस पुराण की भाषा बड़ी सरल है, उसमें प्रासादिकता का गुण सर्वत्र विद्यमान् है। बिना किसी टीका या भाष्य के एक सामान्य संस्कृतज्ञ भी उसे समझ सकता है। यत्र-तत्र कुछ सूक्तियां विस्तृत बालुका प्रदेश में रजत खण्डों की भांति चमक जाती हैं। यदि पुराणों के मानने वाले इन सूक्तियों से कुछ सीख लें तो अच्छा ही है अन्यथा तो पुराण ग्रन्थ स्वामी दयानन्द के मतानुसार विषसम्पृक्तान्न वत् त्याज्य ही हैं। सूक्तियों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) "अकामया बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति" प्रकृति० ५८। १ ॥

यदि कोई स्त्री बलवान् जार पुरुष के हाथ में पड़कर भ्रष्ट हो जाय तो स्वयं कामना रहित होने के कारण दूषित नहीं मानी जा सकती। यदि पौराणिक बन्धु इस कथन की सत्यता पर विश्वास रखते तो उन बलात्कार से अपहृता तथा दूषित अबलाओं को तिरस्कृत और समाज बहिष्कृत नहीं करते जो देश विभाजन की सङ्कटपूर्ण घड़ियों में जबरदस्ती भ्रष्ट की गई तथा जिनका धर्म परिवर्तन किया गया।

(२) गृहिणी का महत्व इस सूक्ति में अवलोकनीय है—

भार्याशून्या वनसमा सभार्याश्च गृहा गृहाः।
गृहिणीं च गृहं प्रोक्ते न गृहम् गृह मुच्यते ॥
—प्रकृति० ५९। १४ ॥

पत्नी रहित घर वन के समान है, पत्नी युक्त घर ही घर है। गृहिणी को ही घर कहते हैं, पत्नी शून्य घर घर नहीं कहलाता।

(३) कर्मकाण्ड में दक्षिणा का महत्व—

दैवं वा पैतृकं वाऽपि नित्यं नैमित्तिकं यथा।
यत्कर्म दक्षिणा हीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ गण० ७। २४

दैव कर्म, पितृ कर्म या नित्य, नैमित्तिक कोई भी कर्म क्यों न हो, जिसमें पुरोहित को दक्षिणा न दी जाय, वह सब निष्फल हो जाता है।

(४) माता कुमाता न भवति।

कुपुत्रा कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः।
कुत्र माता पुत्र दोषं तं बिहाय च गच्छति॥

कुपुत्र चाहे कोई हो जाय परन्तु कुमाता कहीं नहीं होती। क्या माता अपने पुत्र के दोष के कारण उसे छोड़कर जा सकती है।

(५) एक सुभाषित देखिये—

बल वेषश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम्।
बलं प्रतापो भूयानां बालानां रोदनं बलम्॥

वेश्याओं का शृङ्गार ही उनका बल है, स्त्रियों का यौवन ही बल है, राजाओं का बल उनका प्रताप है और बालकों का रुदन बल है।

(६) अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ कृ० ८१। ५५॥

किये हुये शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।

कुछ फुटकर बातें--

हास्यास्पद भविष्य वाणियाँ

अन्य पुराणों की भाँति ब्रह्मवैवर्त में भी कुछ विचित्र भविष्य वाणियाँ की गई हैं। जिनमें से अधिकांश मिथ्या और हास्यास्पद हैं। प्रकृति खण्ड अध्याय ७ में कहा गया है—

एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छामया भवे।
हस्तप्रमाणे वृक्षे चांगुष्ठमाने च मानवे॥ ५७॥

इस प्रकार कलियुग के प्रवृत्त होने पर सब संसार म्लेच्छपूर्ण हो जायगा, हाथ के प्रमाण के वृक्ष होंगे और अँगूठे जितने मनुष्य होंगे। अँग्रेजी उपन्यासकार ने तो Lilliputians की कल्पना अवश्य

की थी, जो अँगूठे के आकार के थे, अन्यथा पुराण की भविष्य वाणी अभी तक अधूरी ही है। इसी अध्याय में आगे विष्णु यश ब्राह्मण के यहाँ कल्कि अवतार होने की भविष्य वाणी भी की गई है जो "दीर्घेण करवालेन दीर्घ घोटक वाहनः म्लेच्छा शून्याँ च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥" ५९ ॥ बड़े घोड़े पर सवार अपनी लम्बी तलवार से तीन रात्रि में सम्पूर्ण पृथ्वी को म्लेच्छों से शून्य कर देंगे। अब तक तो न कल्कि अवतार हुआ है और न उसके निकट भविष्य में होने की ही सम्भावना है।

कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ११८ में भी इसी प्रकार के ऊटपटांग भविष्य कथन मिलते हैं। कृष्ण से नन्द ने कहा है—

कलेर्दशसहस्राणि मदर्चा भुवि तिष्ठति।
तदर्धानि च वर्षाणि गङ्गा भुवन पावनी ॥ २८ ॥

कलियुग के १० हजार वर्षों तक मेरी पूजा संसार में स्थिर रहेगी और उसके आधे अर्थात् पाँच हजार वर्षों तक संसार को पवित्र करने वाली गङ्गा ही स्थिर रहेगी, उसके पश्चात् नष्ट हो जायगी। इस हिसाब से तो गङ्गा को अब धराधाम से लुप्त हो जाना चाहिये क्योंकि कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। परन्तु इन पुराण वचनों में कोई सार नहीं।

कलियुग में गङ्गा को पाँच हजार वर्षों तक ही ठहरने का आदेश कृष्ण ने दिया है—

कलेः पञ्च सहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले।
पापानि पापानो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥ १२९।५०॥

तुम कलिकाल में ५ हजार वर्ष पर्यन्त रहो। पापी लोग स्नान द्वारा अपने पाप तुम्हें देंगे। अब भगवान् की आज्ञा को भी यदि गङ्गा न सुने तो किसका अपराध ?

अश्वमेधं गवालम्भं सन्यासं पल पैतृकन् ॥ ११६ । १२ ॥
देवरेण सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ ११६ । १३ ॥

यह कलि वर्ज्य विषयक् सुप्रसिद्ध श्लोक इस पुराण में भी

मिलता है। इन पंक्तियों के लेखक ने एक पृथक् लेख में इस विषय की विस्तृत आलोचना की है।

तान्त्रिक प्रभाव : माँस भक्षण समर्थन

जिस युग में ये पुराण नामधारी ग्रन्थ रचे गये थे, तब तक वाममार्ग के तन्त्र ग्रन्थों का देश में पर्याप्त प्रचार हो चुका था। यही कारण है कि पुराणों पर भी तन्त्रों का दूषित प्रभाव लक्षित होता है। यद्यपि ब्रह्मवैवर्त एक वैष्णव पुराण है परन्तु तन्त्र प्रभावित होने के कारण उसमें माँस भोजन का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। उदाहरणार्थ, प्रकृति खण्ड में महादेव सुयज्ञ नामक राजा का वर्णन करते हैं, जिसके राज्य में सुपक्व माँस ब्राह्मणों के लिये नित्य दिया जाता था—

सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति ॥ ५० । १२ ॥

स्वायंभुव मनु ने नर्मदा के तट पर एक हजार राजसूय यज्ञ किये, तीन लाख अश्वमेध और तीन लाख ही नरमेध यज्ञ किये। गोमेध यज्ञ चार लाख किये तथा वह तीन करोड़ ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराता था। यह समस्त कथा प्रकृति खण्ड अध्याय ५४ में आई है। पुराणों की अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन प्रणाली को उचित Dsco-unt देकर आगे पढ़ें—

पाँच लाल गायों का मांस सुपक्व और घृत संस्कृत होकर ब्राह्मणों को खिलाया जाता था। जब तक पुराणों में इस प्रकार के कथन विद्यमान् रहेंगे, तब तक उनके अनुयायी गो-बध बन्द कराने में नितान्त अक्षम सिद्ध होंगे और रतनलाल बंसल जैसे व्यक्ति कंस की सेना में भर्ती होकर गो-बध को प्रोत्साहित करते रहेंगे।

प्रकृति खण्ड अध्याय ६१ में राजा चैत्र का वर्णन है, राज्य में—

"पञ्च कोटि गवां मांसं सायूयं स्वन्नमेवच।

एतेषां च नदी राशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने ॥ ६६ ॥

पांच करोड़ गायों का माँस पुत्रों सहित ब्राह्मणों को खिलाया

जाता था। यद्यपि यह कहना हो नितान्त मूर्खतापूर्ण एवं असम्भव है कि पाँच करोड़ गायों का मांस नित्य तैयार कर खिलाया जाता था, तथापि पुराणों के ऐसे वचनों की विद्यमानता हमारे विरोधियों के हाथ मजबूत करतो हैं, अत: उन्हें ग्रन्थों से निकाल देना ही श्रेयस्कर है।

कृष्ण का विवाह रुक्मिणो से हुआ, परन्तु रुक्मिणो के भाई रुक्मी की उसमें सम्मति नहीं थी। वह चाहता था शिशुपाल से उसकी बहिन का विवाह हो। यहो परामर्श उसने अपने पिता को भी दिया था। विवाह की तैयारी के प्रसङ्ग में उसने कहा—

गवां लक्षं छोदनं च हरिणानां द्विलक्षम्।
चतुर्लक्षम् शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु॥ १०५। ६१॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम्॥ ६२॥
ऐतेषां पक्वं मांसं च भोजनार्थं च कारय॥ ६३॥

एक लाख गायें, दो लाख हरिण, चार लाख खरगोश, और चार लाख ही कछुए, दस लाख बकरे तथा उनसे चौगुने भेड़ इन सब पशुओं का मांस पकवाकर भोजन तैयार करायें। हमें पता नहीं कि रुक्मो के इस प्रस्ताव का क्या हुआ ? यदि यह क्रियान्वित हो जाता तो निश्चय ही विदर्भ देश मूक पशुओं के रक्त की नदी में डूब जाता। पौराणिक बन्धु यह कह कर पीछा छुड़ाना चाहेंगे कि यह तो रुक्मि का प्रस्ताव मात्र ही था, और रुक्मी स्वयं आसुर मनोवृत्ति रखने वाला तथा कृष्ण का विरोधी था। हमारा निवेदन इतना हो है कि चाहे उपर्युक्त प्रस्ताव अस्वीकृत ही क्यों न हो गया हो, उससे इतना तो पता चल ही जाता है कि पुराणकर्ता की सम्मति में तत्कालीन भारतीय (आर्य) समाज न मांस भोजी ही था, अपितु उसमें गोहत्या का भो प्रचलन था। जिस विवाह में एक लाख गायें मारी जायें, और यह उल्लेख हमारे एक मान्य धर्म ग्रन्थ में हो, इससे अधिक विडम्बना और क्या होगी ?

मांस भक्षण विषयक् प्रकरणों का इस पुराण में समाविष्ट

होना निश्चय ही तांत्रिक प्रभाव का द्योतक है। यही नहीं, तन्त्रों के प्रभाव को अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध किया जा सकता है।

प्रकृति खण्ड के अध्याय संख्या ५६ में राधा सम्बन्धी कुछ मन्त्र मिलते हैं उनका तांत्रिक स्वरूप स्पष्ट है। उदाहरण के लिये—

ओं ह्रीं श्रीं राधिकां ङे'न्तं वह्निजायान्तमेव च ।। ३३ ।।
ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै वह्निजायान्तमेव च ।। ३४ ।।
ओं रां राधां चतुर्थ्यन्तं वह्निनायान्तमेव च ।। ३५ ।।
क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियाँ ङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् ।। ३६ ।।

उपर्युक्त मन्त्रों में ऐं, ह्रीं, श्रीं आदि जो अर्थहीन शब्द प्रयुक्त हुये हैं वे तन्त्रों के ही अनुकरण पर हैं। वस्तुत: तांत्रिक मन्त्रों में केवल शाब्दिक घटाटोप उत्पन्न करने के लिये ही इस प्रकार के निरर्थक शब्दों का प्रयोग होता है।

इसी प्रकार गणपति खण्ड अध्याय १३ में जहाँ गणेश कवच लिखा है, वहां भी इसी प्रकार के मन्त्र उपलब्ध होते हैं—

ओं गं हु श्री गणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।। ८० ।।
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम् ।। ८१ ।।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं सततं पातु नासिकाम् ।। ८२ ।।
ओं श्रीं गं गजाननानेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।। ८३ ।।
ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डम् सदाऽवतु ।।८४।। आदि

यह समस्त मन्त्र ब्रह्मवैवर्त पर तांत्रिक प्रभाव सूचित करते हैं। वाममार्ग का प्रभाव वैष्णव सम्प्रदाय पर भी विद्यमान है, यह राधा की परकीयाभाव की उपासना से अनुमानित होता है।

असम्भव वार्ता :— पुराणों के पाठक यह तो भला भाँति जानते हैं कि इन ग्रन्थों में अनेकों युक्ति तर्क विरुद्ध असम्भव गाथायें भरी पड़ी हैं। यदि कोई इस प्रकार की समस्त गाथाओं को एकत्रित करें तो वह संग्रह एक नवीन पुराण का ही रूप धारण कर लेगा। ब्रह्मवैवर्त में भी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कथा कहा-

नियाँ और गाथायें प्रभूत मात्रा में पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ का निर्देश करना आवश्यक है। प्रकृति खण्डान्तर्गत जो दुर्गोपाख्यान है उसमें दैत्यों से युद्ध रत दुर्गा का चित्रण इन शब्दों में किया गया है—

सा सजस्रभुजा देवी मुण्डमाल विभूषणा।
योजनायतवक्त्रा च दशयोजन विस्तृता॥

सप्तताल प्रमाणाश्च यस्या दन्तः भयानकाः।
क्रोश प्रमाणजिह्वा च महालीला भयङ्करो॥ ६१।४२।४३॥

वह हजार हाथों वाली देवी जो मुण्डमालाओं से विभूषित है, जिसके मुख दस योजन विस्तार वाले हैं। सात ताल वृक्षों के प्रमाण के जिसके दांत हैं और एक कोस लम्बी जिसकी भयङ्कर जीभ है। शायद ऐसी ही पुराण वर्णित असम्भव गाथाओं से प्रेरणा पाकर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस में कुम्भकरण की योजन लम्बी लम्बी मूँछों का वर्णन किया है।

कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय १३१ में अग्नि और स्वर्ण की उत्पत्ति लिखी हैं। यह एक ऐसा विचित्र आविष्कार पुराण ने किया है जिसे देखकर समस्त विश्व के भूगर्भ शास्त्री भी आश्चर्य में पड़ जायँ। लिखा है—

एकदा सर्व देवाश्च समूषु स्वर्ग संसदि।
तत्र कुर्वन्ति च नृत्यं च गायन्त्यप्सरसां गणा॥ ३५
विलोक्य रम्भां सुश्रोणिं सकामो वन्हिरेव च।
पपात वीर्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा॥ ३६
उत्तस्थौ स्वर्णपुञ्जश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभः।
क्षणेन वर्धयामास स सुमेरु बभूव ह॥ ३७
हिरण्यरेतसं वन्हि प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ३८

एक दिन समस्त देवता स्वर्ग सभा में बैठे थे। वहाँ अप्सराओं का नृत्य और गान हो रहा था। रम्भा को देखकर अग्निदेव उत्तेजित हो गये और उनका वीर्यपात हो गया, जिसे उन्होंने लज्जा से वस्त्रों में छिपा लिया। वही बढ़कर स्वर्ण पर्वत सुमेरु बन गया। इसीलिये

बुद्धिमान लोग अग्नि को हिरण्यरेतस (स्वर्ण के वीर्य वाला) कहते हैं। अगर स्वर्ण धातु की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है तो भूगर्भ विद्या के छात्रों के पाठयक्रम में यह पुराणांश सम्मिलित कर लिया जाना चाहिये। बात स्वामी दयानन्द की ही सत्य है कि पुराण लेखक तो भूगोल विद्या (भूगर्भ शास्त्र भी इसी के अन्तर्गत आता है) के शत्रु होते हैं।

नारी निन्दा

ब्रह्मवैवर्तपुराण भी उस काल की रचना है जिस समय नारी की स्वतन्त्रता का बलात्कार से हरण कर लिया गया था और वह पुरुष की दासी बना दी गई थी। उसका कार्यक्षेत्र केवल घर ही रह गया था। जिस प्रकार अर्वाचीन स्मृति ग्रन्थों में 'न स्त्री स्वातत्र्यमर्हति' का नारा लगाया गया है उसी प्रकार इस पुराणकार की सम्मति में भी 'या स्वतन्त्रताश्च ता नष्टा: सर्वधर्मबहिष्कृता:' कृ० १७। ७८ जो नारियाँ स्वतन्त्र हैं वे नष्ट होकर धर्म बहिष्कृत हो जायेंगी। यहां भी 'पिता रक्षतु कौमारे' वाली ही बात कही गई है, शब्द अवश्य भिन्न हैं—

कौमारे रक्षिता तातो दत्त्वा पात्राय संस्कृती।
सवदारक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुत:॥ १७। २५॥

बाल्यकाल में स्त्री की रक्षा उसका पिता करे, पश्चात उसे किसी उत्तम पात्र से ब्याह दिया जाय तो उसकी सदा रक्षा करे पति के अभाव में उसका पुत्र रक्षक होता है। मानो स्त्री का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व रहा ही नहीं।

इसी खण्ड के ७५ वें अध्याय में कृष्ण नन्द से एक सुगोपनीय वेद और पुराणों में भी दुर्लभ ज्ञान की बात कहते हैं और वह है—

"न विश्वासो हि नारीषु संतत कुलटासु च"॥ ७५। २॥

नारियों पर कभी विश्वास नही करना चाहिये, वे सदा कुलटा होती हैं। यह है पुराणों में उपलब्ध होने वाला ज्ञान, जबकि वेदों में

नारी को 'शुद्धा पूता योषिता यज्ञिया इमा' कहकर उसे शुद्ध, पवित्र और यज्ञ के तुल्य पूज्य बताया है। हाँ, पुराणों में तो नारी-निन्दा सर्वत्र मिलती है, अतः ब्रह्मवैवर्तकार का यह 'वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम्' कैसे हुआ ?

ब्रह्म वैवर्त्त की अर्वाचीनता

अब तक हमने ब्रह्मवैवर्तपुराण के सभी आलोचनीय प्रसंगों की आलोचना कर ली है और उसके आधार पर हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह पुराण अत्यन्त अर्वाचीन है। इसकी रचना उस समय हुई जब कि हमारे देश में कृष्ण भक्ति का प्रचार अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था और उसमें परकीया भाव का प्रवेश भी हो चुका था। श्री वेङ्कटेशनारायण तिवारी के लेख के आधार पर हमें यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि इसका रचनाकाल १६ वीं शताब्दी के आस पास है। इसमें गीता, उपनिषद्, मनुस्मृति, भागवत् आदि ग्रन्थों के वाक्यों के अनुकरण पर वाक्य रचना मिलती है तथा कोई कोई श्लोक तो ज्यों का त्यों पूर्व ग्रन्थ से उठा कर रख दिया गया है इससे भी ब्रह्मवैवर्त की अर्वाचीनता सिद्ध हो जाती है। हम अपनी बात की पुष्टि के लिए प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं।

गीता	ब्रह्मवैवर्त्त
सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥अ०१०।२६	सिद्धानां कपिलो यथा ॥१२
गायत्री छान्दसामहम् ॥१०। ३५	गायत्री छान्दसा यथा ॥२२
वेदानां सामवेदोऽस्मि ॥ १०। २२	वेदानां सामवेदश्च ॥ २३
रामः शस्त्रभृतामहम् ॥ १० ३१	नृणां राजा रामचन्द्रो ॥ २८

इसी सूची को और भी बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार का विभूति कथन इसी खण्ड के ३२ वें अध्याय में भी मिलता है। यहाँ भी गीता की भाँति 'ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः" ।४२। कहा गया है। कुछ और भी वाक्यों में गीता के शब्दों की झलक मिलती है। यथा—

गीता	ब्रह्मवैवर्त
संभावितस्यचाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते । (गीता २।३४)	प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते गणेश० ३४ । ७६

विभूति कथन कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ७४ में भी मिलता है। यहाँ अन्य बातें तो गीता के लिए तुल्य ही हैं। इतना विशेष है— "पर पुराणसूत्रेषु चाहं भागवत वरम् । भारतं चेतिहासेषु पञ्चरात्रेषु कापिलम्" ॥ ७४ । ७९

पुराणों में मैं भागवत हूँ, इतिहासों में महाभारत और पांचरात्र ग्रन्थों में कपिल प्रोक्त ग्रन्थ हूं। इस कथन से भी इस पुराण की अर्वाचीनता ही सिद्ध होती है। यह पुराण भागवत के बाद में बना है और स्वयं भागवत भी अन्यान्य पुराणों की अपेक्षा अर्वाचीन है। पाञ्चरात्र ग्रन्थ भी अधिक पुराने नही हैं।

ब्रह्मवैवर्त और उपनिषद्

उपनिषद् के भी कई वाक्यों को इस पुराण में किञ्चित् परिवर्तन के साथ ले लिया गया है। निम्न उदाहरणों से यह कथन सिद्ध होगा।

उपनिषद्	ब्रह्मवैवर्त्त पुराण
भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।	यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततः ॥
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम ॥ कठ० ६ । ३	यदाज्ञया हि कालश्च शश्वदभ्रमति वेगत मृत्युश्चरति जन्तूनां आति गणयति ॥ ४५ । ५३-५४

मनुस्मृति का संध्या विषयक यह श्लोक तो ज्यों का त्यों उठाकर यहाँ रख दिया गया है—

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ कृ० ७५।७०

जो व्यक्ति प्रातः और साँय की संध्या नहीं करता उसे शूद्र के तुल्य समस्त द्विजकर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिये।

भागवत का यह शुक देवी कथन 'तेजीयसां न दोषाय वह्ने सर्वभुजो यथा' भी इस पुराण में एकाधिक बार प्रयुक्त हुआ है।

इस पुराण की अर्वाचीनता सिद्ध करने के लिए एक युक्ति यह भी दी जा सकती है कि इसमें भी अन्यान्य अर्वाचीन ग्रन्थों की भाँति आधुनिक जातियों का वर्णन और उनकी निन्दा मिलती है। कृष्ण नन्द से कहते हैं—

कायस्थे नोदरस्येन मातुर्मां सं न खादितम्।
अत्र नास्ति कृपा तस्य दन्ताभावेन केवलम् ॥ ३६ ॥
स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् कायस्थश्च ब्रजेश्वर।
नरेषु मध्ये ते धूर्ताः कृपाहीना महीतले ॥ ३७ ॥
हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम्।
शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ ॥ कृ० ८५। ३८

कायस्थ ने माता के उदर में रहकर उसका मांस नही खाया, इसमें उसकी कृपा नहीं है, दाँतों का अभाव ही इसका एक मात्र कारण है। स्वर्णकार, स्वर्ण व्यापारी और कायस्थ ये पृथ्वी पर मनुष्यों के बीच धूर्त और कृपाहीन होते हैं। इनका हृदय धुरे के तुल्य कठिन होता है, सैकड़ों में से कोई एक ही इनमें सज्जन मिलता है।

हम पौराणिकों से पूछना चाहेंगे कि क्या कृष्ण के समय में भी कायस्थ आदि आधुनिक जातियाँ विद्यमान थीं और कृष्ण जो साक्षात् परमात्मा थे, क्या उनके लिये उचित था अपने समदर्शित्व को भुलाकर वे किसी जाति की निंदा करें तथा अन्य की प्रशंसा करें निश्चय ही ये श्लोक इस पुराण की नवीनता की सूचना देते हैं। यह ग्रन्थ उस काल में रचा गया जब भारत में जाति भेद अपनी पराकाष्ठा को पहुंच चुका था और जातियों में परस्पर द्वेष और एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति चरम सीमा पर थी। उसी समय पुराण लेखक ने

कृष्ण और नन्द की आड़ लेकर कायस्थ आदि जातियों के विरुद्ध यह विष वमन किया है।

अर्वाचीन स्मृतियों के अनुकरण पर ही इस पुराण में भी भक्ष्याऽभक्ष्य आदि अनेक विधान लिखे गये हैं। उदाहरणतः कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ८५ में कृष्ण नन्द से चारों वर्णों के भक्ष्याऽभक्ष्य का विधान कहते हैं—इसमें लिखा है।

ब्राह्मणानां वैष्णववानामभक्ष्यं मात्स्यमेव च।
इतरेषामभक्ष्यं च पंच पर्वसु निश्चितम् ॥ २५ ॥
पितृदेवत्वशेषे च भक्ष्यं मांसां न दूषितम्।
पंच प वैसु त्याज्यं च सर्वेषां मनुरब्रवीत् ॥ २६ ॥

अर्थात् ब्राह्मणों औरवष्णवों को मछली नहीं खानी चाहिए अन्यों को भी पाँच पर्वों पर तो कम से कम मांस भक्षण त्याग ही देना चाहिए। पितृ और देव कार्य का अवशिष्ट मांस दूषित नहीं माना जाता है अतः ग्राह्य है परन्तु पांच पर्वों पर तो उसे भी त्याग देना चाहिए, यह मनु ने कहा है।

यह सभी जानते हैं कि मनुस्मृति में मांस विधायक श्लोक क्षेपककारों की करामात है, जो इस ग्रन्थ में उस काल में मिला दिये गये थे, जब कि यज्ञों और श्राद्धों के अवसर पर मांस का प्रयोग वाममार्ग के प्रभाव के कारण प्रारम्भ हो गया था। मनु के इन प्रक्षिप्त श्लोकों का उल्लेख करना भी इस पुराण की नवीनता ही सिद्ध करते है।

उपसंहार—

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराण की संक्षिप्त समीक्षा करने का प्रयास उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है। इस विवेचन से पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि ये पुराण नामधारी रचनायें अत्यन्त निम्न कोटि की हैं और उनमें भी ब्रह्मवैवर्तपुराण तो अपने शतशः आक्षेप योग्य स्थलों के कारण किसी भी प्रकार धर्मशास्त्र की गणना में नहीं आ सकता। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द ने जब-जब भी इन १८ पुराणों का उल्लेख किया है वहाँ 'ब्रह्मवैवर्तादि अष्टादशपुराण' यह लिख कर इस पुराण की निकृष्टता की ओर विशेष रूप से संकेत किया है। शमित्योम् * * *